

ॐ

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध पत्रिका

A Review of rare buddhist texts

10

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

1990

द्विः

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध पत्रिका

10

सम्पादक

प्रो० एस. रिनपोछे
योजना निदेशक

प्रो० ब्रजवल्लभ द्विवेदी
उपनिदेशक



सत्यमेव जयते

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द २५३४

कार्तिक पूर्णिमा

ख्रीस्ताब्द १९९०

सहायक मण्डल

पं० जनार्दन पाण्डेय

डॉ० ठाकुरसेन नेगी

डॉ० बनारसीलाल

ठिनलेराम शाशनी

डॉ० टशी सम्फेल

पेन्पा दोर्जे

विजयराज वज्राचार्य

प्रथम संस्करण : ५५० प्रतियाँ

मूल्य : रु० ५५.००

© केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ १९९०

प्रकाशक :

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान

सारनाथ, वाराणसी

मुद्रक : रत्ना प्रिंटिंग वर्क्स, कमच्छा, वाराणसी

Dhīh

A Review of rare buddhist texts

10

Editor

PROF. SAMDHONG RINPOCHE
Project Director

PROF. VRAJVALLABH DWIVEDI
Deputy Director



बौद्धविद्या संस्थानम्

RARE BUDDHIST TEXT RESEARCH PROJECT

Central Institute of Higher Tibetan Studies

SARNATH, VARANASI

B. E. 2534

KĀRTIKA PŪRNIMĀ

C. E. 1990

Co-Editors

Pt. Janardan Pandey

Dr. Banarsi Lal

Dr. Tashi Samphel

Dr. Thakur Sain Negi

Thinlay Ram Shashni

Penpa Dorjee

Vijay Raj Vajracharya

First Edition : 550 Copies

Price : Rs. 55.00

© Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath, 1990

Published by :

Central Institute of Higher Tibetan Studies
Sarnath, Varanasi

Printed by :

Ratna Printing Works, Kamaçcha, Varanasi.

धी:

विषयानुक्रमणी

अप्रकाशित स्तोत्र

श्रीमन्महाबोधिवन्दनाष्टकम् 1

मञ्जुश्रीकृतमादिबुद्धस्तोत्रम् 2

दुर्लभ ग्रन्थ परिचय—जनार्दन पाण्डेय 3-24

लुप्त बौद्ध वचन संग्रह—डॉ० बनारसीलाल 25-31

बौद्ध पारिभाषिक शब्दों का अभिप्राय—ठिनलेराम शाशनी 32-50

चार बौद्ध कुलों की समयमुद्राएँ—जनार्दन पाण्डेय 51-55

सर्वतथागततत्त्वसंग्रह : श्लोकार्धानुक्रमणी—ठिनलेराम शाशनी 56-89

दुर्लभ ग्रन्थों की आधार सामग्री—डॉ० ठाकुरसेन नेगी 89-139

बौद्ध तन्त्रों में पीठोपपीठादि का विवेचन (3)—डॉ० बनारसीलाल 140-152

नरोपा की प्रभास्वर योगसाधना—डॉ० ठाकुरसेन नेगी 153-160

महामुद्रा दर्शन : परम्परागत साधनाविधि (2)—डॉ० टशी सम्फेल 161-169

निबन्धों का संक्षिप्त परिचय (तिब्बती) 170-175

निबन्धों का संक्षिप्त परिचय (अंग्रेजी) 176-178

विनिष्टेन्द्रियवर्गो नष्टविकल्पोऽसमाप्तभवबीजः ।

आनन्दभासयाऽसौ गमनसमोऽप्यहह शीतलः स्वादुः ॥

—योगिनी चिन्ता

श्रीमन्महाबोधिवन्दनाष्टकम्

[ये दोनों स्तोत्र—महाबोधिवन्दनाष्टक और आदिबुद्धस्तोत्र—श्री जगन्नाथ उपाध्याय जी के व्यक्तिगत संग्रह से प्राप्त अप्रकाशित स्तोत्रसंग्रह से लिये गये हैं । इनका पत्राङ्क 7,10 तथा स्तोत्राङ्क 22,28 है ।]

ॐ नमो बुद्धाय

सौवर्णवर्णं कलविङ्कघोषं ब्रह्मस्वरं कारुणिकं सुसेव्यम् ।
नरोत्तमं शीलविशुद्धदेहं श्रीमन्महाबोधिमहं नमामि ॥ 1 ॥

शाक्येन्द्रवंशोद्भवदिव्यदेहं तृष्णाच्छिदं मारभितं जिनेशम् ।
ज्ञानास्पदं क्लेशभितं विनेशं श्रीमन्महाबोधिमहं नमामि ॥ 2 ॥

समन्तभद्रं वरलक्षणाङ्गं सत्त्वार्थसिद्धिं सुकृतैः प्रणम्यम् ।
श्रेयस्करं सत्त्वहितैकचित्तं श्रीमन्महाबोधिमहं नमामि ॥ 3 ॥

धर्मोदकं यः कृपयोत्ससर्ज रागाग्निसन्दोषितपुद्गलानाम् ।
सुखाय संबोधिययोमुच्यं तं श्रीमन्महाबोधिमहं नमामि ॥ 4 ॥

भवाब्धिनित्स्तरणसेतुभूतं तथागतं तत्त्वविदं नृसिंहम् ।
त्रैलोक्यनाथं वरबोधिरत्नं श्रीमन्महाबोधिमहं नमामि ॥ 5 ॥

पदार्थसम्पादनसुव्रतस्थं मायासुतं मारभितं जितारिम् ।
शास्तारमग्नं वरबोधिसत्त्वं श्रीमन्महाबोधिमहं नमामि ॥ 6 ॥

लोकेशनाथं हरिनाथनाथं भूतेशनाथं सुरनाथनाथम् ।
कृतान्तनाथं नरनाथनाथं श्रीमन्महाबोधिमहं नमामि ॥ 7 ॥

स बुद्धरूपः स हि धर्मरूपः स एव संघोऽपि विनेयकानाम् ।
अभूच्छरण्यः शरणागतानां श्रीमन्महाबोधिमहं नमामि ॥ 8 ॥

॥ इति श्रीमन्महाबोधिवन्दनाष्टकं समाप्तम् ॥

मञ्जुश्रीकृतमादिबुद्धस्तोत्रम्

श्रीस्वयंभुवे नमः

नमस्ते बुद्धरूपाय धर्मरूपाय ते नमः ।
नमस्ते संघरूपाय पञ्चबुद्धात्मने नमः ॥ 1 ॥
पृथ्वीरूपायाब्धिरूपाय तेजोरूपाय ते नमः ।
नमस्ते वायुरूपायाकाशरूपाय ते नमः ॥ 2 ॥
ब्रह्मणे सत्त्वरूपाय रजोरूपाय विष्णवे ।
तमोरूपमहेशाय ज्ञानरूपाय ते नमः ॥ 3 ॥
प्रज्ञोपायात्मरूपाय गुह्यरूपाय ते नमः ।
दिव्यरूपलोकपालाय विश्वरूपाय ते नमः ॥ 4 ॥
चक्षुरूपाय कर्णाय घ्राणरूपाय जिह्वके ।
कायरूपाय श्रोत्ररूपाय मनसे नमः ॥ 5 ॥
नमस्ते रूपरूपाय शब्दरूपाय ते नमः ।
रसगन्धस्वरूपाय स्पर्शरूपाय ते नमः ॥ 6 ॥
धर्मरूपधारकाय षडिन्द्रियात्मने नमः ।
मांसास्थिमेदोमज्जानां संघातरूपिणे नमः ॥ 7 ॥
रूपाय जगतानां ते स्थावराणां च मूर्तये ।
तिरश्चां मोहरूपाय रूपायाश्चर्यमूर्तये ॥ 8 ॥
जन्मरूपसृष्टिकर्त्रे कालरूपाय मृत्यवे ।
भव्याय वृद्धरूपाय बालाय ते नमो नमः ॥ 9 ॥
प्राणापानसमानोदानव्यानमूर्तये नमः ।
वर्णाय वर्णरूपाय भोक्त्रे स्वमूर्तये नमः ॥ 10 ॥
दिनरूपाय सूर्याय चन्द्राय रात्रिमूर्तये ।
तिथिरूपाय नक्षत्रयोगवारादिमूर्तये ॥ 11 ॥
बाह्याभ्यन्तररूपाय लौकिकाय नमो नमः ।
नैर्वाणाय नमस्तुभ्यं बहुरूपाय ते नमः ॥ 12 ॥
आदिबुद्धद्वादशकं पुण्यं प्रातः पठिष्यति ।
यदिच्छेत् तत्तलभेन्नूनं मनुजो नित्यनिश्चयः ॥ 13 ॥
॥ इति आदिबुद्धद्वादशकं समाप्तम् ॥

दुर्लभ ग्रन्थ परिचय

—जनार्दन पाण्डेय—

['घोः' के इस अङ्क में निम्नलिखित 7 ग्रन्थों का परिचय दिया जा रहा है—

1. मन्त्रसमुच्चय
2. धारणीसंग्रहपुराणमहायानसूत्रराज
3. संशयपरिच्छेद
4. अमनसिकारक्रम
5. डाकार्णव
6. अध्यात्मसारशतक—प्रभाकर गुप्त
7. स्वाधिष्ठानप्रभेद—आर्यदेव

इनमें महत्ता और पाठकों के लिये उपयोगिता की दृष्टि से अमनसिकारक्रम का जितना अंश उपलब्ध था वह और स्वाधिष्ठानक्रमप्रभेद सम्पूर्ण दे दिया गया है ।]

1. मन्त्रसमुच्चयः

ग्रन्थ—मन्त्रसमुच्चय

संख्या—MBB-1971-89

पत्रसंख्या—28, पंक्ति प्र० प० 12, अक्षर प्र० प० 52

आधार—नेपाली कागज, लिपि—नेवारी, अपूर्ण ।

प्रारम्भ

.....नमस्त्रैयध्वकानां सर्वतथागतानाम् ॐ शुभविवरणवरदः चुरु² मुलु² सर्वतथागतधातुधर
पद्मगर्भं परक्षेत्रस्वा.....तथागतधर्मचक्रप्रवर्तनं वज्रबोधिमन्त्रपः अलंकारः अलंकृतः सर्वतथागताधिष्ठितः
बोधय² बाधनि².....स्वस्ति भवन्तु सर्वावरणानि सर्वपापविगतः हुरु² सर्वस्वकविगतः सर्वतथागत-
हृदयवक्त्रिणि सम्भव² तथागतगुह्यधातु.....बुद्ध² सुबुद्ध² सर्वतथागत अधिष्ठित धातुगर्भं स्वाहा,
ॐ सर्वतथागत अधिष्ठित स्वाहा सर्वतथागत हृदयधातु मुद्ध स्वाहा ।.....यतिस्थित वक्रतथागताधिष्ठित
स्वाहा हूं हूं फट् स्वाहा । सर्वतथागत उष्णीषधातुमुद्गीती सर्वतथागतधर्मधातुविभूषित अमृत²
हूं² स्वाहा ।

अन्त

ॐ नमो भगवते अतिबलमहारत्नपर्यङ्कानुरागाय तथागताय अर्हते सम्यक्संबुद्धाय प्रतिघात-
सहाय पाशाङ्कुशलाय पञ्चमहापापमोचन जहि । ॐ नमो भगवते रत्नशरणधर्मपाणये तथागताय अर्हते
सम्यक्संबुद्धाय । थगुवासाया पुण्यानेकप्रकारथगुवाताय... काय... सुश्रु... नमो भगवते प्रवरास्थिचय-
हसद्विनयसत्त्वसहस्रपारमिताय अर्हते सम्यक्संबुद्धाय थगु वातायाय नमः ॥

पुष्पिका

नहीं है ।

विवरण

इस ग्रन्थ की माइक्रोफिश प्लेट एडवांस स्टडी आफ वर्ल्ड रिलीजन्स, न्यूयार्क से शान्तरक्षित
ग्रन्थालय में प्राप्त हुई है, जिसके आधार पर यह विवरण दिया गया है ।

यह मन्त्रों का संग्रहमात्र है, जिसमें पत्र 1 से 19 तक 67 मन्त्र और 19 से 24 तक 51 मन्त्रों
में मन्त्रसंख्या क्रम से दी गई है । 24 से 28 तक विना संख्या के 27 मन्त्र हैं । कुल 145 मन्त्रों का
संग्रह है । ये मन्त्र कहाँ से लिये गये हैं, कौन किस देवता का मन्त्र है और उसका विनियोग कहाँ
कैसे होगा, ऐसा कोई संकेत नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि किसी विद्वान् ने अपनी स्मृति के लिये
इनका संकलन किया है, इसलिये किसी प्रकरण या पुष्पिका का प्रश्न ही नहीं उठता । पत्र 3-4 और
28 से आगे नहीं हैं । पत्र 25 में “पञ्चविंशति वैरोचन या हृदय”, “श्रीचक्रसंवर या हृदय”, पत्र
27 में “शतसाहस्रिका प्रज्ञापारमिताधारणी समाप्त”, पत्र 28 में “अष्टसाहस्रिकानाम हृदय समाप्त”
तथा “प्रज्ञापारमिता हृदयधारणी समाप्त” ये वाक्य उन मन्त्रों के अन्त में लिखे हैं । केवल मन्त्र-
ज्ञान के लिये ग्रन्थ उपयोगी है । बीच-बीच में मन्त्र-संगति बैठाने के लिये ‘थगु’ ‘या’ आदि नेवारी
भाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया है ।

2. धारणीसंग्रहपुराणमहायानसूत्रराजः

ग्रन्थ—धारणीसंग्रह पुराणमहायानसूत्रराज

संख्या—MBB—II—171

पत्रसंख्या—1-282, पंक्ति प्र० पं० 10, अक्षर प्र० पं० 44

आधार—नेपाली कागज, लिपि—नेवारी, पूर्ण ।

प्रारम्भ

ॐ नमः श्रीवज्रसत्त्वाय । नमः श्रीरत्नगर्भाय ।
विहरति कनकाद्रौ शाक्यसिंहो मुनीन्द्रः
परिमितसुरसंघैः सेव्यमानो जनौघैः ।
कुवलयदलनेत्रो लक्षणैर्युक्तगात्रः
.....सर्वलोके हितज्ञः ॥

ये देवाः सन्ति मेरौ वरकनकमये मण्डले ये च यक्षाः
पाताले ये भुजङ्गाः फणिमणिकिरणा ध्वस्तमोहान्धकाराः ।
कैलास्ये(से) श्रीविलास्ये(से) प्रमुदितहृदया ये च विद्याधरेन्द्रा-
स्ते मोक्षद्वारभूतं मुनिवरवचनं श्रोतुमायान्ति सर्वे ॥

अन्त

इदमवोचद् भगवानात्तमनास्ते च भिक्षवस्ते च बोधिसत्त्वाः सा च सर्वावती पर्वत् सदेव-
मानुषासुरगरुडगन्धर्वाश्च लोका भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्निति ।

पुष्पिका

इति श्री आर्यश्रीधारणीसंग्रहः पुराणमहायानसूत्रं रत्नचाक्रं परिसमाप्तः ।

विवरण

इस ग्रन्थ की माइक्रोफिश प्लेट एडवांस स्टडी आफ वर्ल्ड रिलीजन्स, न्यूयार्क से शान्तरक्षित
ग्रन्थालय में प्राप्त हुई है, जिसके आधार पर यह विवरण दिया गया है ।

इसमें प्रायः 108 धारणियों का संग्रह है । प्रत्येक धारणी की अवान्तर पुष्पिका भिन्न है ।
'धीः' के द्वितीय अंक में जिन धारणियों का परिचय दिया जा चुका है, उनमें निम्नांकित 36
धारणियाँ नहीं हैं, जो इस ग्रन्थ में उपलब्ध हैं । शेष सभी उसमें आ चुकी हैं ।

- | | |
|-----------------------------------|-------------------------------------|
| 1. श्री योगाम्बरनाम धारणी | 11. श्री वसुन्धराया नन्दिमुखनाम धा० |
| 2. ,, चक्रसंवरनाम धारणी | 12. ,, धर्मधातुवागीश्वरनाम धा० |
| 3. ,, अपरिमितानाम धा० | 13. ,, लोकेश्वरशतनामस्तोत्रनाम धा० |
| 4. ,, पर्णशबरीतारानाम धा० | 14. ,, खसर्पणानाम धा० |
| 5. ,, प्रतिसरायां विद्याधरनाम धा० | 15. ,, दानपारमितानाम धा० |
| 6. ,, सिंहनादलोकेश्वरनाम धा० | 16. ,, शीलपारमितानाम धा० |
| 7. ,, अमोघपाशलोकेश्वरनाम धा० | 17. ,, शान्तिपारमितानाम धा० |
| 8. ,, विजयवाहिनीनाम धा० | 18. ,, वीर्यपारमितानाम धा० |
| 9. ,, अष्टमातृकानाम धा० | 19. ,, ध्यानपारमितानाम धा० |
| 10. ,, शनिश्चरस्तवनाम धा० | 20. ,, प्रज्ञापारमितानाम धा० |

- | | |
|-----------------------------|---------------------------|
| 21. षट्पारमितानाम धारिणी | 29. ललितविस्तरनाम धारिणी |
| 22. आर्यषण्मुखनाम धा० | 30. सपनेयविद्यानाम धा० |
| 23. आर्यसत्याक्षरनाम धा० | 31. आर्यमेघसूत्रनाम धा० |
| 24. लोकातीतस्तवनाम धा० | 32. चतुर्भुजमहाकालनाम धा० |
| 25. सुवर्णप्रभानाम धा० | 33. षड्भुजमहाकालनाम धा० |
| 26. वज्रवैरोचनीदेवी नाम धा० | 34. षोडशभुजमहाकालनाम धा० |
| 27. विघ्नेश्वरनाम धा० | 35. भृकुटीतारानाम धा० |
| 28. दशभूमीश्वरनाम धा० | 36. गणेशषोडशनाम धारिणी |

3. संशयपरिच्छेदः

ग्रन्थ—संशयपरिच्छेद

संख्या—3 363

पत्रसंख्या—36 (गणनया), पंक्ति प्र० प० 6 (प्रायः) अक्षर प्र० पं० 52

आधार—ताडपत्र, लिपि—प्राचीन नेवारी, अपूर्ण ।

प्रारम्भ (उपलब्ध पत्र से)

एवं मत्वा कल्याणमित्रविरहात् स्वचित्तस्य यथाभूतपरिज्ञानमनधिगम्य अहङ्कारममकारेण रिक्तं तुच्छं शून्यं शुभाशुभाधिकं कल्पेऽपि वाऽनादिसंसारे दुःखमनुभवन्ति । यथोक्तं भगवताऽऽर्याष्ट-साहस्रिकायां प्रज्ञापारमितायां कल्याणमित्रपरिवर्ते—“सुभूतिराह—यदि भगवन् सर्वधर्मा विविक्ताः, सर्वधर्माः शून्याः कथं भगवन् सर्वसत्त्वानां संक्लेशं प्रजायते, कथं भगवन् सर्वसत्त्वानां व्यवदानं प्रजायते, न च भगवन् सर्वसत्त्वानां विविक्तं संक्लिश्यते, न च भगवन् विविक्तं व्यवदायते, न च भगवन् शून्यं संक्लिश्यते । न च भगवन् शून्यं व्यवदायते । न च शून्यं वा विविक्तं वा, शून्यं वाऽनुत्तराम””वापि गतिमदुच्यते....”

अन्त

वज्रगुरुराह—

नापनेयमतः किञ्चित् प्रक्षेप्तव्यं न किञ्चन ।

द्रष्टव्यं तु ततो भूतं भूतदर्शी विमुच्यते ॥ इति ।

निष्पन्नक्रमस्यैतदधिवचनं यदुत भूतदर्शनमिति, भूतदर्शनाच्छाश्वतोच्छेदसंक्रान्तादिदृष्टयो निरुद्धयन्ति, तथापि व्यवहारमाश्रित्य संक्रान्तिविशुद्धिं नि....

पुष्पिका

नहीं है।

विवरण

इस ग्रन्थ की माइक्रोफिल्म राष्ट्रीय अभिलेखागार, काठमाण्डू से शान्तरक्षित ग्रन्थालय में आई है, जिसके आधार पर यह विवरण दिया जा रहा है।

यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उपयोगी ग्रन्थ प्रतीत होता है। इसमें वज्रशिष्य और वज्रगुरु के प्रश्नोत्तर के रूप में बौद्ध धर्म, दर्शन और साधना से सम्बद्ध सम्पूर्ण संशयों का उच्छेदन किया गया है। छोटे-छोटे व्यावहारिक विषयों से लेकर बड़े-बड़े गूढ़ रहस्यों तक की शंकाओं का समाधान है। दुर्भाग्य से ग्रन्थ अपूर्ण है। पञ्चम परिच्छेद के कुछ अंश से ग्यारहवें परिच्छेद के कुछ अंश तक ही उपलब्ध है। पूर्ण ग्रन्थ के कहीं होने की सूचना अभी तक किसी ग्रन्थसूची से हमें नहीं प्राप्त हुई। पञ्चम से दशम परिच्छेद तक की अवान्तर पुष्पिकाएँ इस प्रकार हैं—

कर्मान्तविभागमेलावणसंशयपरिच्छेदः पञ्चमः ।

संवृतिसत्यमेलावणसंशयपरिच्छेदः षष्ठः ।

परमार्थसत्यमेलावणसंशयपरिच्छेदः सप्तमः ।

अप्रतिष्ठितनिर्वाणधातुमेलावणपरिच्छेदोऽष्टमः ।

श्रीसर्वबुद्धसमायोगडाकिनीजालसंवरन्यायेन बोधिसत्त्वचरितधर्मोदयाभिसम्बोधि-
प्रपञ्चतामेलावणपरिच्छेदो नवमः ।

निष्प्रपञ्चतया मेलावणपरिच्छेदो दशमः ।

इस प्रकार इस उपलब्ध अंश में कर्मान्तविभाग, संवृतिसत्य, परमार्थसत्य, अप्रतिष्ठितनिर्वाण-धातु, धर्मोदयाभिसम्बोधि और निष्प्रपञ्चता विषयक ही प्रश्नोत्तर हैं। ग्रन्थ की प्रश्नोत्तरशैली बड़ी रोचक है। शिष्य लम्बे-लम्बे प्रश्न करता है और गुरु अत्यन्त संक्षेप में सम्पूर्ण प्रश्न का समाधान कर देते हैं। उदाहरण के लिये षष्ठ परिच्छेद का प्रथम प्रश्न और उसका उत्तर इस प्रकार है—

वज्रशिष्य उवाच—युष्मत्पादप्रसादादनन्तरोक्तप्रवचनानुसारेण कायवाक्चित्तस्य स्वलक्षणे प्रविचार्यमाणे यदवधीरितं समाप्त्यनन्तरं तद्भूटारकपादौ निवेद्योत्तरं समाधिविशेषं परिपृच्छामि उत्पत्तिक्रमादारभ्य कायविवेकस्य पर्यन्तं त्रिवज्रविनाभावलक्षणा विमुक्तिमात्रतः कायविवेकदेवतारूपं न विद्यते, परमाणुसमूहत्वात् कायस्य । वाग्विवेकस्यापि पर्यन्तं प्रवेशादिक्रमेण वज्रजपमात्रापरिज्ञानं तत्रापि देवताकारो न विद्यते, प्रति...पमस्वभावत्वाच्छब्दस्य । चित्तविवेकस्यापि पर्यन्तं प्रकृत्याभास-परिज्ञानमात्रम् । तत्रापि सर्वाकारवरोपेतादिलक्षणान्वितदेवतास्वरूपं नोपलभ्यते, आभासमात्रत्वा-च्चित्तस्य । अनेन द्योत्येन संवृतिसत्यमाश्रित्ये(ते)न विना प्रतिष्ठानं लभते । तस्माज्ज्ञानमात्रेण देवता-निष्पत्तिं गुरुप्रसादादवगन्तुमिच्छामि ।

वज्रगुरुराह—साधु साधु महासत्त्व ! अचिन्त्यं तु देवतातत्त्वं सर्वबुद्धोपदेशं गुरुपर्वक्रमागतं दशभूमीश्वराणामप्यगोचरं ते प्रतिपादयिष्यामि । स्वचित्तस्य यथाभूतपरिज्ञानं मनोगे स्कन्धे वाञ्छ्वाय-तनादीनामभावे तु त्रयप्रकृत्याभासमात्रेण सर्वलक्षणोपेतदेवतारूपग्रहणम् । तच्च स्वप्नमायादिद्वादश-दृष्टान्तरूपलक्षितमयं बुद्धानाममनोमयकायः ।

ग्रन्थ का जितना अंश उपलब्ध है, उसमें प्रायः गुह्यसिद्धि और गुह्यसमाज के वचन उद्धृत हैं और वैरोचनाभिसम्बोधितन्त्र, समाधिराजसूत्र, मूलसूत्र, परमाद्यमहायोगतन्त्र, डाकिनीजालसंवर तथा कम्बलाचार्यपाद के वचन भी प्रमाणरूप में दिये गये हैं । ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है ।

4. अमनसिकारक्रमः

ग्रन्थ—अमनसिकारक्रम

संख्या—MBB—II—144

पत्रसंख्या—5, पंक्ति प्र० पं० 12, अक्षर प्र० पं० 54

आधार—ताड़पत्र, लिपि—नेवारी (प्राचीन), पूर्ण ।

विवरण

यह ग्रन्थ एडवांस स्टडीज आफ वर्ल्ड रिलीजन्स, न्यूयार्क से माइक्रोफिश प्लेट के रूप में शान्तरक्षित ग्रन्थालय में आया है । उसी के आधार पर यह विवरण दिया जा रहा है । इसमें—

इति बुद्धबोधिसत्त्वसिद्धानामाम्नायः ।

अमनसिकारयथाश्रुतक्रमः समाप्तः ।

सम्प्रदायविधिः ।

भगवतीसंहार्येत्याम्नायः ।

ये चार अवान्तर पुष्पिकाएँ हैं । इसके प्रत्येक प्रकरण में जो सिद्धपराम्पराक्रम दिया है और नागार्जुन एवं अद्वयवज्र के संबन्ध में जो विवरण दिया है, वह अनुसन्धितसुओं के लिये उपयोगी हो सकता है, इसलिये इस लघु ग्रन्थ से केवल प्रारम्भ और अन्त की सामग्री न देकर ग्रन्थ का उपलब्ध पूरा अंश ही हम यहाँ दे रहे हैं । न्यू कैटलाग्स कैटलागरम् भाग 1, पृष्ठ 316 में सूचित किया गया है कि 'अमनसिकाराम्नाय' नाम से इस ग्रन्थ को प्रो० जी० टुची ने 1930 ई० में जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल के पेज नं० 148-155 में प्रकाशित किया है ।

नमो मञ्जुवज्राय ।

मञ्जुवज्रं प्रणम्यादौ नाथपादमनन्तरम् ।

अमनसिकाराम्नायं वक्ष्यते सुमहोदयम् ॥

संबुद्धा बोधिसत्त्वाश्च सिद्धास्तैरनुशासिताः ।
 अभिषिक्तास्तथेत्येषामाम्नायक्रम इष्यते ॥
 तत्रादौ धर्मचक्रेऽस्मिन् श्रावकैः परिवारिताः ।
 उपतस्थे स भगवान् दिशन् पारमितादिकम् ॥
 ततस्तान् स परित्यज्य गतवान् दक्षिणापथे ।
 निर्माय धर्मधात्वाख्यं मण्डलं सुमनोरमम् ॥
 नायकः स्वयमेवात्र बोधिसत्त्वाश्च षोडश ।
 नायकाश्चाभवन्तष्टौ तथाष्टावुपनायकाः ॥
 नामतश्च निगद्यन्ते क्रमतो मण्डलस्थिताः ।
 मण्डलं तु गुरुद्विष्टं नैतदाम्नायसंगतम् ॥
 मैत्रेयः क्षिनिगर्भश्च वज्रपाणिः खगर्भकः ।
 लोकेश्वरश्च मञ्जुश्रीः सर्वनिर्वरणस्तथा ॥
 समन्तभद्रश्चन्द्राभः सूर्याभोऽमलकीर्तिना ।
 विमलप्रभस्तथा धर्मोद्गतो रत्नमतिस्तथा ॥
 व्योमगङ्गाश्च सुधनो मण्डलस्था यथाक्रमम् ।
 अभिषेकं ततस्तेषां दत्त्वा पारमितादिकम् ॥
 समर्प्य शाक्यसिंहेन व्याकृतः शासनेऽमुना ।
 आर्यनागार्जुन इति भविष्यति महामतिः ॥
 प्रकर्तव्यमनेनापि धर्मचक्रप्रवर्तनम् ।
 दक्षिणापथदेशेऽस्मिन् पत्तने करहाटके ॥
 ब्राह्मणस्य कुले जन्म पिता चास्य त्रिविक्रमः ।
 माता सावितृ(त्री)नाम्न्यस्य व्याकृतादपरं मतम् ॥
 दामोदरेति विख्यातो भिक्षुत्वे शाक्यमित्रकम् ।
 नामापरं रत्नमतिरनुग्रहविधौ स्थितः ॥
 आह्वाऽद्वयवज्रेति वज्रयोगिन्यधिष्ठितः ।
 सरहः सिद्धिभाक् तेन तदनुग्राहको भवेत् ॥
 अस्यैवानुग्रहात् पूर्वं तेन(ना)कारि च नाम तत् ।
 ततः श्रुतं हयग्रीवं पश्चाच्च दर्शनम् ॥

रत्नमतिना च समं वरेन्द्र्यां प्रस्थितः पुनः ।
 लेखयित्वा प्रतिष्ठेदं बोधिसत्त्वस्य धीमतः ॥
 पूजां प्रतिदिनं तस्य कृत्वा नागार्जुनोऽवसत् ।
 ग्रामे देव(व)पुराख्ये तु प्रक्रान्तः सुसमाहितः ॥
 लोको नाम नटस्तस्य गौरी च सहचारिणी ।
 तयोः पुत्रस्त्रिशरण आर्यमध्येस(ष)ते परम् ॥
 रत्नमतिं दर्शयति स तमाह न पश्यसि ।
 ज्ञानक्षणेन विकलः कथं त्वं पश्यसि क्षणात् ॥
 तं प्रत्याह त्रिशरणस्त्वं मेऽनुग्रहं कुरु ।
 यथा पश्यामि तं नाथं ज्ञानचक्षुरतीन्द्रियः ॥
 आर्यनागार्जुनानुज्ञां प्राप्य सिद्धस्तदाभवत् ।
 बोधिसत्त्वेन च ततोऽनुगृहीतो यथार्थतः ॥
 मनोभङ्गचित्तविश्रान्ती चर्यास्थानं विवेचितम् ।
 आकृतिं सव(शब)रस्यासौ दधन् हि वसति स्म सः ॥
 ॥ इति बुद्धबोधिसत्त्वसिद्धानामाम्नायः समाप्तः ॥

इन्द्रभूतिपा । उडुनी । वज्रयोगिनी । मिलापा । नारोपा । अद्वयवज्रपा । ध्यायीपा । महा-
 पण्डितामोघश्रीः । अथवा सव(शब)रनाथ । अद्वयवज्र । वज्रपाणि । पैण्डपातिक । पण्डिताभयाकर-
 गुप्त । पुनरद्वयवज्रस्येति । वः करुणा उपायचक्रम् । जः शून्यता । तयोरेकं रेफः । वाक्पथातीत-
 वाकारो राकाराकारवर्जितः । हेत्वनुपलब्धि हीकारो वाराही वज्रपूर्विका ॥ इति परमार्थविशुद्धिः ।
 कायवाक्चित्तविशुद्ध्या त्रि(गु?)कोणं हेतुफलयोरभेदत्वात् त्रिकोणं तुल्यता धर्मोदयेति ॥

नमः श्रीवज्रयोगिन्यै । प्रथमं बाह्यपूजा सिद्धरेण । असम्भवे मन्त्रेण । स्वहृदि सूर्यस्थ-
 हंकाररश्मिभिराकृष्य प्रवेश्य पुष्पादिभिः संपूज्य तदनन्तरं जगच्छून्यीकृत्य शून्यतानन्तरं झटित्यात्मानं
 भगवतीं भावयेत् । पर्वतशिरोपरि नानापुष्पोपेतां सूर्यस्थहंकाररश्मि संस्मार्य स्वासवातो यथा....
 गः । अमृतास्वादनं वशीकरणे पर्वतादिकं पारदसदृशं भावयन् वामनासापुटेन पिबेत् । त्रिकालं
 वलिसाधना च कर्तव्या । यथाऽऽदित्यो बालतरुणाद्यनपेक्ष्य स्वकिरणैः पर्वतमाक्रामति तथा भगवती-
 पर्वताक्रान्तं भावयेत् । अमृतमास्वादयेत् । शिष्यानुग्रहे जिह्वायां मन्त्रमभिलिख्य स्वहृद्रश्मिनादं
 प्रवेश्य आवेशयेत् । वज्रयोगिनी गुरुपरम्परा । शबरनाथ, सागरदत्त, विजयमोघ, अनङ्गवज्र,
 वसो, पिण्डपातिक, पण्डितविनयगुप्त, महापण्डितवागीश्वर, अवधूतसुधनश्री, लीलावज्र, ललित-
 वज्र, कोविदारपण्डितपादाः ।

नमः श्री स(श)बरेश्वराय । इह खलु मध्यदेशे पद्मकपिलवस्तुमहानगरसमीपे झाडकरणी नाम पल्लिकाऽस्ति । तस्मिन् स्थाने ब्राह्मणजातिर्नानुको नाम ब्राह्मणी च सावित्री नाम प्रतिवसति स्म । तदा च कालान्तरेण दामोदरो नाम तत्पुत्रो बभूव । स चैकादशवर्षदेशीयः कुमारः सामार्द्धवेदको गृहान्निष्क्रम्य मर्तु(मृत्यु)बोधो नामैकदण्डोऽभूत् । ततः पश्चाल्लीकटीसत्त्रे पाणिनिव्याकरणं श्रुत्वा सप्तवर्षपर्यन्तं सर्वशास्त्रमधिगम्य विंशतिवर्षपर्यन्तं नारोपादसमीपे प्रमाणमाध्यमिक-पारमितानयादिशास्त्रं श्रुतम् । तदनु मन्त्रनयशास्त्रज्ञेन रागवज्रेण सहाऽवस्थितः पञ्चवर्ष-पर्यन्तम् । पश्चान्महापण्डितरत्नाकरशान्तिगुरुभट्टारकपादानां पार्श्वे कारव्यवस्थां श्रुत्वा वर्षमेकं यावत् । पश्चाद् विक्रमशीलं गत्वा महापण्डितज्ञानश्रीमित्रपादानां पार्श्वे तत्प्रकरणं श्रुतं वर्षद्वयं यावत् । ततो विक्रमपुरे गत्वा संमतीयनिकाये मैत्रीगुप्तो नाम भिक्षुर्बभूव । सूत्राभिधर्मविनयं च श्रुत्वा वर्षचतुष्टयं यावत् पञ्चक्रमताराम्नायेन मन्त्रजपं कृत्वा कोटिमेकं चतुर्मुद्रार्थसहितेन भट्टारकेण स्वप्ने गदितं गच्छ त्वं खसर्पणम् । तत्र विहारं परित्यज्य खसर्पणं गत्वा वर्षमेकं यावन्नि-षीदति । पुनरपि स्वप्ने गदितं गच्छ त्वं कुलपुत्र दक्षिणापथे मनभङ्गचित्तविश्रामौ पर्वतौ तत्र स(श)बरेश्वरस्तिष्ठति, स च तवानुग्राहको भविष्यतीति । तत्र च मार्गे सागरनामा मिलिष्यति, स च चीनदेशवासिराजपुत्रस्तेनापि सार्धं गच्छ, पश्चाद् गते सति सागरेण मिलितम् । उद्देशपर्यन्तेन मनभङ्गचित्तविश्रामयोर्वार्ता न श्रुतवान् । श्रीधान्यं गत्वा वर्षमेकं स्थितवान्, पश्चाद्वाहुल्येन तत्र देशे साधिष्ठानतारां साधयितुमारब्धवान् । मासैकेन स्वप्नोऽभूत् । गच्छ त्वं कुलपुत्र वायव्यां दिशि पर्वतौ तिष्ठन्तौ पञ्चदशदिनेन प्राप्तव्यौ । भट्टारिकाया वाक्येन वायव्यां दिशं संघातैः सार्धं गच्छति प्राप्तिपर्यन्तं पुरुषेणैकेनोक्तं परमदिने मनभङ्गचित्तविश्रामौ प्राप्येते लग्नौ । तत्र सुखेन वस्तव्यम् । इति श्रुत्वा पण्डितपादो हृष्टोऽभूत् । अपरदिनं प्राप्तम् । तत्र पर्वते दिने दिने दश दश मण्डलानि कृतवान् । कन्दमूलफलाहारं कृत्वा दिनदशपर्यन्तं शिलातले पर्यङ्कमारुह्य एकाग्रचित्तेन उपवासं कर्तुमारब्धः । सप्तमे दिवसे स्वप्नदर्शनं भवति । दशमे दिवसे ग्रीवां छेतुमारब्धः । तत्क्षणात् साक्षाद्दर्शनं भवति सेकं ददाति । अद्वयवज्रनामाऽभूत्, पञ्चक्रमचतुर्मुद्रादिव्याख्यानं कृतं द्वादशदिनपर्यन्तम् । पुनरप्युपदेशेन पञ्चदिनं यावत् सर्वधर्म-दृष्टान्तेन वीणां वादयति । तत्र पद्मावली ज्ञानावली । स(श)बरेश्वरेण आज्ञां दत्त्वा प्राणाति-पातादिमायां दर्शय त्वम् । तदनन्तरं सागरः कायव्यूहं वर्धयते । पण्डितपादेनोक्तः—भगवन् किमप्यहं कायव्यूहं निर्मायितुमशक्तः ? स(श)बरेश्वर आह—विकल्पसंभूतत्वात् । पण्डित आह—तर्हि किं कर्तव्यं मम ज्ञापयन्तु पादाः ? स(श)बराधिप आह—तवेह जन्मनि सिद्धिर्नास्ति देशनाप्रकाशनाः कुरु । अद्वयवज्र आह—अशक्तोऽहं भगवन् कर्तुं कथं करिष्यामि । आह—इह वज्रयोगिन्युपदेशात् करिष्यसि त्वम्, फलं च फलिष्यतीति । इहोपदेशमुक्त्वा भट्टारकपादो जन्तर्धानोऽभूत् ।

नेदं धनुर्न च मृगा न वराहपोतः सम्पूर्णचन्द्रवदना न च सुन्दरीयम् ।
निर्माणनिर्मिततयाऽर्थिजनस्य हन्त सतिष्ठते गिरितले स(श)बराधिराजः ॥

॥ अमनसिकारयथाश्रुतक्रमः समाप्तः ॥

नमः सर्वज्ञाय । पूर्ववदकारादिचक्रं संपूज्य विहितभगवतीयोगः प्रणवपीठादागतवदनः
काण्डपीठाद् बहिर्गत्वा कृतपञ्चमण्डलोदग्दक्षिणः प्रणवपीठागतवदन उपायचक्रं लिखित्वा प्रवेश्य
नाथाङ्कितशिरस्कः स्वहृदि चक्रं संस्कार्य वक्त्रेण वक्त्रं दत्त्वा तद्धृदि ध्यानं मुखमापूर्य वज्रभूतोऽ-
ष्टोत्तरशतमन्त्रितं कृत्वा “मुहे मुहं दइ मेल” तत उपायचक्रमिति भ्रमन्तं विचिन्त्य मन्त्रितपुष्पताडनं
डमरुं घण्टां वा संवाद्य साटोपं मन्त्रमुच्चारयन् धूपं दद्याद् । यदि तस्य प्रकम्पादिनिमित्तमुपार्जयेत्तदैव
कथनीयं नैवान्यथा, तदनु चक्रादुद्धृत्य मन्त्रदाने गुरुपरम्पराकथनं कर्तव्यमिति सम्प्रदायविधिः ॥
एतदभिसन्धाय गुरुपर्वक्रमान्नायसम्प्रदायैकगोचरमिति । तत्कथा च कथितव्या श्रद्धोत्पादनार्थम् ।
शिष्यज्ञानाकृष्टिरभिधीयते । इह जन्मनि यदि न सिद्ध्यति तदा मरणसमये चक्रं तन्मुखात् स्वमुखे
प्रविश्य स्वस्थान एव लीन इति लूयीपादोपदेशात् संवरणवतन्त्रमानेतुमोडियानं गतस्तत्र योगिनी-
पाश्वे दिनचतुष्टयं यावत् स्थितश्चौर्येण तत्तन्त्रमानीतं नदीपारे तथा दृष्ट्वा एतत्साधनं सर्वमपि
वायुना नीतं वज्राङ्गनासकाशे । कुकुरीपादैः श्रुतमिन्द्रभूतिपादैर्लक्ष्मीकराविस्वापादैः पैण्डपातिक-
डिङ्गरपैण्डपातिकाः ।

नमः श्रीवज्रयोगिन्यै । प्रथमं यथासंभवं पूजोपकरणं कुर्यात् । अग्रे बलिं स्थाप्य वामे मद्यपात्रं
पञ्चपीयूषसंयुक्तम् । वामकरे चन्द्रो दक्षिणकरे सूर्यः । ह्रद्रश्मिनादेन नासापुटेन निश्चार्य करे
विलीय करशोधनम्, तत्करे मद्यपात्रं पिधाय मन्त्रस्नानं पूजाद्रव्यं च प्रोक्षयेत् । मण्डलीकरणके
त्रिकोणाकारेण मध्ये वं । उपरि यथाविधिगोपितदिव्योदकसमायुक्तसिन्दूरपूजा, अभावे पुष्पादिभि-
र्बीजपूजा । तदनन्तरं त्रिविशुद्धिमनुस्मरेत् । आत्मानं त्रैधातुकविशुद्धिकूटागारं विचिन्तयेत् । श्रुति
नाभिमण्डले भगवतीं भावयेत् । मुद्राद्वययोगजो वाग्जपः, तदनन्तरमग्रे निश्चार्य पूजास्तुतिरमृता-
स्वादनम् । सार्वभौतिकदिक्पालेभ्यः शेषामृतढौकम् । इति भगवतीसंहार्येत्याम्नायः ॥

5. डाकार्णवः

ग्रन्थ—डाकार्णव

संख्या—4-8

पत्रसंख्या—158, पंक्ति प्र० प०—12, अक्षर प्र० पं०—62,

आधार—नेपाली कागज, लिपि—नेवारी, पूर्ण ।

प्रारम्भ

ॐ नमः श्रीसर्ववीरवीरेश्वरीभ्यः ।

एवं मया श्रुतमेकस्मिन् समये भगवान् महावीरेश्वरः सर्वतथागतवीरकायवाक्चित्तवज्रयोगिनीभगेषु क्रीडितवान् । तत्र महावीरेश्वर उवाच—

इन्द्रजालं मया दृष्टं महासुखसमाधिना ।
संसारव्यवहारे न निर्वाणं प्रतिपद्यते ॥
तत्र मध्ये महाबिम्बं महं विन्दति इन्द्रियान् ।
वीरांश्च स्वस्वभावेषु शृण्वन्तु ज्ञानसागरान् ॥
योगिनीचक्रमध्ये तु पृच्छाम्यहं वाराहिका ।
इन्द्रजालं किमाख्यातं मया तु कोऽत्र संज्ञकः ॥
दृष्टं वाव महा चैव सुखं भुक्तं किमेतत् ।
समाधिर्नाम किं तत्र कृतं ते भुवनेष्वपि ॥

अन्त

इदमवोचद् भगवानात्तमनाः

अनन्तापर्यन्ताश्चैव कलिकाले भुवान्तरे ।
शाक्यसिंहेन तन्त्रं च कथितो योगपारंगम् ॥
श्रोतारं स्वयमे शास्ता वक्तारं च परे जने ।
सुभाषितं भाष्यमानं तन्मयं च गतिर्भवेत् ॥
मयाभिस्मा गतिं प्राप्तं संगीतिकारकादिभिः ।
संगीतिवज्रपीठेषु स.....तिः ॥
अर्धे सनार्धे सनश्च कृत्वा परस्परं मतम् ।
भगवतो भाषितं च अभ्यनन्दमिदं वचः ॥
मुक्ता गच्छन्ति पापैस्तु भवस्यासयमानताः ।
इत्याह भगवान् स्वामी वज्रडाकस्तथागतः ॥
सर्ववीरसमायोगाद् वज्रसत्त्वः परं सुखम् ।

पुष्पिका

इति श्रीडाकार्णवमहायोगिनीतन्त्रराजे योगज्ञानसंवरक्रियातत्त्वार्णवासीतडाकार्णवादिमं नाम तुल्यं तन्त्रराजं समाप्तः ॥

अतिरिक्त

ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत् ।
 तेषां च यो निरोधो ह्येवंवादी महाश्रमणः ॥
 योऽसौ धर्मः सुगतगदितः पठ्यते भक्तिभावाद्
 मात्राहीनः कथमपि पदं पादगाथाक्षरं वा ।
 जिह्वादोषः पवनचरितैः श्लेष्मदोषः प्रचारे
 यूयं बुद्धाः स्वभवनगता बोधिसत्त्वाः क्षमध्वम् ॥

श्रेयोऽस्तु संवत् १८८३ मिति पौषशुक्लपूर्णिमा पर प्रतिपदा सोमवारदिने लिखित सम्पूर्णमिति ।

विवरण

इस ग्रन्थ की माइक्रोफिल्म राष्ट्रीय अभिलेखालय, काठमाण्डू से शान्तरक्षित ग्रन्थालय में प्राप्त हुई है, जिसके आधार पर यह विवरण दिया जा रहा है ।

यह ग्रन्थ कई दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है—

१. यह स्वतन्त्ररूप से मूल तन्त्र है, इसमें किसी दूसरे ग्रन्थ से उद्धरण नहीं लिये गये हैं और इसको प्रायः सभी प्राचीन ग्रन्थकारों ने उद्धृत किया है ।

२. कारिडर के सूचीपत्र से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ के आधार पर महापण्डित जयसेन ने निम्नलिखित ४ ग्रन्थों की रचना की है—

- १—डाकार्णवतन्त्र मण्डलचक्रसाधन—रत्नपद्मरागनिधि
- २—डाकार्णवतन्त्र होमविधि—रत्नसूर्यकान्त
- ३—डाकार्णवतन्त्र अभिषेकविधि—रत्नगर्भकोश
- ४—डाकार्णवतन्त्र बलिविधि—रत्नाश्मगर्भ

३. कारिडर कैटलाग से ही यह भी ज्ञात होता है कि श्रीपद्मवज्र ने इस पर बोहित्थ नामक टीका लिखी है ।

४. यद्यपि मूल ग्रन्थ संस्कृत में है, किन्तु इसके बीच-बीच में पर्याप्त मात्रा में अपभ्रंश के अंश आये हैं । इन अंशों को एकत्र कर उनकी व्याकरण दृष्टि से शुद्धि, संस्कृत छाया, तिब्बती पाठ के साथ तुलना तथा पाठान्तर आदि द्वारा अत्यन्त श्रमसाध्य सम्पादन करके 'डाकार्णव' नाम से श्री नगेन्द्रनारायण चौधरी ने १९३५ ई० में कलकत्ता से प्रकाशित कराया था । इससे पूर्व इसके कुछ अंशों का परिचय म० म० हरप्रसाद शास्त्री जी अपने "हजार वचनेर पुराण बांगला भाषाय बौद्ध गान ओ दोहा" में दे चुके थे । उक्त दोनों विद्वानों का अभिमत है कि इसमें आये हुए अपभ्रंश अंश

प्राचीन बंगला भाषा के हैं, जो भाषावैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इसलिये यह अपभ्रंश के, विशेषतः सौरसेनी प्राकृत के अध्येताओं के लिये अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है।

5. एस० बी० दास गुप्ता ने अपने "एन इंट्रोडक्सन टू तान्त्रिक बुद्धिज्म" की बिब्लियो-ग्राफी में डाकार्णव शास्त्री एडिसन और चौधरी एडिसन कह कर अलग-अलग उद्धरण दिये हैं, इससे ऐसा लगता है म० म० हरप्रसाद शास्त्री जी ने इस ग्रन्थ का सम्पादन व प्रकाशन किया था। एशियाटिक सोसाइटी कैटलाग भाग 1 (बुद्धिस्ट पाम लीव) पृष्ठ 91 में शास्त्री जी ने लिखा है— इसके 3 पटल मैंने प्रकाशित करा दिये हैं, किन्तु यह संस्करण हमें देखने को नहीं मिला।

6. श्री चौधरी ने जिस पाण्डुलिपि को आधार माना है और जिनसे पाठभेद दिये हैं, उनसे यह पाण्डुलिपि, जिसका ऊपर विवरण दिया गया है, भिन्न है, क्योंकि इसके पाठों में उनसे बहुत अन्तर है।

विषयनिर्देश

इस ग्रन्थ में 51 पटल हैं। प्रत्येक पटल की पुष्पिका से उसमें प्रतिपादित विषय ज्ञात हो जाता है, अवान्तर पुष्पिकाएँ इस प्रकार हैं—

इति श्रीडाकार्णवे महायोगिनोतन्त्रराजे ज्ञानार्णवावतारः प्रथमः पटलः	पत्र 5
" " " वज्रवाराही-उत्पत्तिनायकी च यन्त्रचक्रमण्डल-	
भावनादिस्वभावपटलो द्वितीयः	प० 17
" " " डाकिन्युत्पत्तिलक्षणमुखसञ्चारकर्मतत्त्वव्यवस्था-	
विधिपटलस्तृतीयः	प० 19
" " " लामोत्पत्तिलक्षणमन्त्रन्यासषट्चक्रवर्त्यादि-	
स्वभावननिर्वाणादिव्यवस्थापटलश्चतुर्थः	प० 22
" खण्डरोहालक्षणोत्पत्तिचतुश्चक्रनाडीव्यवस्थाने सोद्देशमन्त्रन्यासादिविधिपटलः पञ्चमः	प० 24
" रूपिणीलक्षणस्वभावस्थानव्यवस्थान्त्रलक्षणविधिपटलः षष्ठः	प० 27
" काकास्यादिघ्रा(प्रा)णोत्पत्तिलक्षणविधिपटलः सप्तमः	प० 29
" उलूकास्यानिर्णयसंविधानोत्पत्तिप्राणादिलक्षणपटलोऽष्टमः	प० 31
" श्वानास्यालक्षणमुखाद्यवस्थाविधिपटलो नवमः	प० 32
" सूकरास्योत्पत्तिमण्डलावतारणादिपटलो दशमः	प० 35
" यमदाढीव्यवस्थोत्पत्तिलक्षणनामपटल एकादशः	प० 36
" यमदूतयुत्पत्तिलक्षणादिमृत्युवञ्चनचक्रभावनोपदेशसंक्षेपपटलो द्वादशमः	प० 38
" यमदंष्ट्रिणीप्रयोगावतारमृत्युवञ्चनादिपटलस्त्रयोदशमः	प० 40

इति श्रीडाकार्णवे...यममथन्यवतारोत्पत्तिकालमृत्युवञ्चनादिविधिलक्षणबुद्धावस्था-

स्वभावपटलश्चतुर्दशमः	प० 42
” भगवत्सम्यक्समाधिव्यवस्थिताम्नायसूचकपटलः पञ्चदशमः	प० 55
” मूलमन्त्रोद्धारविधिलक्षणपटलः षोडशमः	प० 68
” कवचोत्पत्तिलक्षणवज्रसत्त्ववाराह्या विधिपटलः सप्तदशमः	प० 69
” वैरोचनादिकवचरक्षाविधिपटलोऽष्टादशमः	प० 70
” पद्मनर्तेश्वरादिरक्षाकवचमन्त्रनिर्णयपटल एकोनविंशतिमः	प० 71
” हेरुकादिरक्षाकवचविधिपटलो विंशतिमः	प० 71
” वज्रसूर्यादिकवचरक्षाविधिपटल एकविंशतिमः	प० 72
” परमास्वादिकवचरक्षाविधिपटलो द्वाविंशतिमः	प० 73
” वलिचक्रपूजाविधिपटलस्त्रयोविंशतिमः	प० 75
” मण्डलहोम-आचार्यपूजाविधिपटलश्चतुर्विंशतिमः	प० 78
” भगवत्यादिशुद्धितथागतप्रतिष्ठाविशुद्धिलक्षणनामपटलः पञ्चविंशतिमः	प० 80
” प्रचण्डादिपूजामण्डलयोगिनीवीराणां मुद्रासंकेतविहरणरक्षाविधिनामगोचरपटलः षड्विंशतिमः	प० 83
” चण्डाक्षीलक्षणमुद्राधिपतिस्वभावविधिपटलः सप्तविंशतिमः	प० 84
” प्रभावतीलक्षणमुद्रा च विधिपटलोऽष्टाविंशतिमः	प० 85
” महानासालक्षणच्छोमविधिनियमपटल एकोनत्रिंशतिमः	प० 86
” मुद्राप्रतिमुद्रावीरमतीस्वभावविधिलक्षणं नाम पटलस्त्रिंशतिमः	प० 87
” खर्वरी-अक्षरच्छोमालक्षणस्वभावज्ञाननामपटल एकत्रिंशतिमः	प० 88
” लङ्केश्वरीमुद्रासंकेतलक्षणमण्डलचक्रस्वभावनामविधिज्ञानपटलो द्वात्रिंशतिमः	प० 90
” हुमच्छायास्वलक्षणमुद्रासंकेतविधिनियमपटलस्त्रयोत्रिंशतिमः	प० 91
” ऐरावतीकायमुद्रालक्षणविधियुक्तिपटलश्चतुस्त्रिंशतिमः	प० 92
” महाभैरवाक्रान्तमुद्राविधानकथनलक्षणविधिपटलः पञ्चत्रिंशतिमः	प० 93
” वायुवेगाप्रयोगविधिमुद्रावर्णकलक्षणपटलः षट्त्रिंशतिमः	प० 94
” सुराभक्षीप्रयोगच्छोमास्वलक्षणविधिपटलः सप्तत्रिंशतिमः	प० 95
” वज्रवाराह्याद्वयश्यामादेव्या वश्यहोमयन्त्रचक्रवज्रमण्डलविधिलक्षणनामपटलः अष्टत्रिंशतिमः	प० 98
” भगवान् मूलमन्त्रस्य सुभद्राद्वययोगात्मा ह्ययन्त्रोद्देशकुलनागकर्मविधिलक्षणपटल एकोनचत्वारिंशतिमः	प० 100

- इति श्रोडाकाणवे.....हयकर्णवीराद्वययोगतः कवचमूलमन्त्रस्य कर्मविधिलक्षणं मारणं च
पटलश्चत्वारिंशतिमः प० 102
- „ खगाननाया वीरायाद्वयं यन्त्रचक्र-उत्पत्तिकरणस्वभावलक्षणविधिहृदयमन्त्र-
सर्वकर्मनामपटल एकचत्वारिंशतिमः प० 104
- „ चक्रवेगाकर्मस्तम्भनवीराद्वययोगलक्षणस्वभावनामविधिपटलो द्वाचत्वारिंशतिमः प० 105
- „ खण्डरोहायाः प्रयोगभावनायन्त्रचक्रमुच्चाटनकर्मषड्योगिनीमन्त्रकवचेषु
विधिलक्षणनामपटलस्त्रिचत्वारिंशतिमः प० 107
- „ सौण्डिनीप्रयोगेषु विद्वेषणलक्षणविधियन्त्रचक्रस्वभावनामपटलश्चतुश्चत्वारिंशतिमः प० 108
- „ चक्रवर्मिणीमूकीकरणप्रयोगविधिलक्षणमण्डलचक्रभावनावीराद्वययोगराक्षसाकार-
यन्त्रचक्रं नामपटलः पञ्चचत्वारिंशतिमः प० 109
- „ सुवीरायाः शान्तिकर्मप्रयोगविधिलक्षणयन्त्रचक्रभावनास्तम्भमन्त्रस्य कर्मप्रसरं
नाम पटलः षट्चत्वारिंशतिमः प० 111
- „ महाबलाया योगेन महारक्षाकीलनमन्त्रस्य कर्मबोधिसत्त्वयन्त्रभावनोपायविधि-
लक्षणो नाम सप्तचत्वारिंशतिमः प० 112
- „ चक्रवर्तिप्रयोगादिनानासाधनकर्मयन्त्रचक्रभावनामार्गमूलमन्त्रोद्देशविधिलक्षण-
सर्वकर्मकं नाम पटलोऽष्टचत्वारिंशतिमः प० 114
- „ महावीर्यायाः प्रयोगलक्षणगुह्यरसायनादिपुष्टिकर्मश्रीसम्यक्समाधिहेरुकमूल-
मन्त्रस्य विधिर्नाम पटल एकोनपञ्चाशत्तमः प० 155
- „ पञ्चविंशतत्त्वात्मा सर्वतन्त्राणामर्थसूचकं सर्वरहस्यं नाम विधिपटलः
पञ्चाशत्तमः प० 156
- „ स्तुतिपूजादिसमयसेवाद्वयपटल एकपञ्चाशत्तमः प० 157

इस ग्रन्थ के 49वें पटल में निम्नलिखित 25 प्रकरण हैं—

- इति खण्डकपालयोगलक्षणसाधनं नाम प्रथमं प्रकरणम् प० 122
- इति गर्दभयोगमहाकङ्कालभावकाम्नायतत्त्वयुक्तिप्रकरणं द्वितीयम् प० 124
- इति कङ्कालविधिप्रकरणं तृतीयम् प० 128
- इति चतुर्थप्रकरणम् [विकटर्दष्ट्रियोगसाधनम्] प० 132
- इति पञ्चमप्रकरणम् [सुरावैरियोगसाधनम्] प० 133
- इति प्रकरणः षष्ठः [अमिताभयोगसाधनम्] प० 135
- इति प्रकरणः सप्तमः [वज्रप्रभयोगसाधनम्] प० 138
- इति प्रकरणम् अष्टमः [कालचक्रप्रयोगसाधनम्] प० 140

- इति प्रकरणं नवमः [मातृग्रहकठपूतनादियोगसाधनम्] प० 141
 इति प्रकरणं दशमः [वज्रजटिलोद्भवयोगसाधनम्] प० 142
 इति प्रकरणमेकादशमः [सिद्धौषधिस्वभावकवंशाकारसमायोगादमृतविरूपणम्] प० 143
 इति प्रकरणं द्वादशमः [ज्ञानसहजोपदेशः] प० 144
 इति प्रकरणं त्रयोदशमः [ज्ञानचर्याव्रतधारणस्येन्द्रियग्रामसौख्यम्] प० 144
 इति प्रकरणं चतुर्दशमः [सत्त्वबोधिरूपमहात्मनां भावकारणकस्थितिः] प० 145
 इति प्रकरणं पञ्चदशमः [गुह्ययोगसाधनम्] प० 147
 इति प्रकरणं षोडशमः [सहजचक्षुर्वर्णकयोगसाधनम्] प० 148
 इति प्रकरणं सप्तदशमः [ज्ञानाद्वैतप्रकरणम्] प० 148
 इति प्रकरणमष्टादशमः [रत्नवज्रप्रयोगसाधनम्] प० 149
 इति प्रकरणमेकोनविंशतिमः [ह्यग्रीवप्रयोगसाधनम्] प० 150
 इति प्रकरणं विंशतिमः [प्रभञ्जनप्रयोगसाधनम्] प० 151
 इति प्रकरणमेकविंशतिमः [स्वयंवेद्यलक्षणयोगप्रकरणम्] प० 152
 इति प्रकरणं द्वाविंशतिमः [पद्मनर्तेश्वरयोगसाधनम्] प० 152
 इति प्रकरणं त्रयोविंशतिमः [वैरोचनयोगसाधनम्] प० 153
 इति प्रकरणं सर्वपीठात्मकं चतुर्विंशतिमः [वज्रसत्त्वयोगसाधनम्] प० 154
 इति प्रकरणं पञ्चविंशतिमः [सर्वरहस्यस्थानकवज्रसत्त्वयोगसाधनम्] प० 155

चतुर्थ से 25 वें प्रकरण तक पुष्पिका में केवल प्रकरण का ही उल्लेख किया है, उसमें प्रतिपादित विषय का नहीं, अतः प्रत्येक प्रकरण में जो विषय आया है, उसे हमने [] कोष्ठ के अन्दर दे दिया है।

6. अध्यात्मसारशतकम्

- ग्रन्थ—अध्यात्मसारशतक (सटीक)
 ग्रन्थकार—प्रभाकर गुप्त, (टीकाकार—शिरोमणि ?)
 संख्या—22859 (फोटो प्रति)
 पत्र सं०—40, पंक्ति प्र० प० 14, अक्षर प्र० प० 42
 आधार—नेपाली कागज, लिपि—देवनागरी, अपूर्ण।

प्रारम्भ

नमः श्रीवज्रसत्त्वाय ।
 नत्वा देवीमसममुखदामुग्रतारामजस्र-
 मासंसारं मुगदचरणं धर्मयुक्तं संस्रवम् ।
 शश्वत्पादारविन्दे गुरुमपि च तथाऽध्यात्मसारस्य चार्थं
 वक्ष्ये संक्षेपतोऽद्य प्रवरगुणगणं शिष्यवाञ्छानुरोधात् ॥

यथा वाञ्छा च बन्धूनां हृत्कीर्तिरूपराजयोः ।
 तथोवाच यथाशक्त्या त्वालापोऽर्थशिरोमणिः ॥ (टीका)
 एकानेकव्युपरतिमुखैः सिद्धचारैरनेकैः
 क्षित्यादीनां न मिलति यतो वस्तुसिद्धिः कुहापि ।
 विज्ञानान्तं तदिह सकलं निःस्वभावं समन्ता-
 न्नैवाकस्मात् स्फुरति नियमाद् देशकालाकृतीनाम् ॥ 1 ॥ (मूल)

अन्त

गुह्याद् गुह्यं कथितमभितोऽध्यात्मसारं यदेतत्
 सिद्धात्मनायं झटिति फलदं चाभिषिक्ताय देयम् ।
 निर्गर्वाय स्वतनुधनभार्यादिसर्वस्वहात्रे
 संविग्नाय स्वपरमरणादर्थिने साधकाय ॥ 100 ॥

अध्यात्मसारसर्वस्वमिदं विधाय
 श्रीमान् प्रभाकरबुधः कृपयाऽवधूतः ।
 यल्लब्धवानभिमतं कुशलं विशालं
 तेनाविनष्टवपुषा सुखितोऽस्तु लोकः ॥ 101 ॥
 अध्यात्मसारसर्वस्वशतके ये विपश्चितः ।
 तेषां चरणपद्मानि सेवध्वं हे मुमुक्षवः ॥ 102 ॥

पुष्पिका

अध्यात्मसारशतकं समाप्तमिति ।
 ॥ कृतिरियं प्रभाकरगुप्तपादानाम् ॥

विवरण

इस ग्रन्थ की मूलकापी की, जो नेवारी लिपि में ताड़पत्र पर है, तथा उसी की प्रतिलिपि जो देवनागरी में की गई है, दोनों की जोराक्स कापी राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमांडू से शान्तरक्षित ग्रन्थालय में आई हैं, देवनागरी वाली प्रतिलिपि से यह विवरण दिया जा रहा है। ये दोनों प्रतियाँ अपूर्ण हैं। इनमें मूल के श्लोक 74 तक और टीका 72 तक हो उपलब्ध हैं। बीच में भी मूल व टीका 47 तथा 63 वें श्लोक की नहीं हैं। नेवारी वाली प्रति में अपाठ्य होने से देवनागरी में भी वह अंश छूट गया है। जापान से आये हुए प्रकीर्ण पत्रों में खोजने पर मुझे इसके 82 से अन्त तक के मूल श्लोक उपलब्ध हुए हैं। ऊपर जो अन्त का अंश उद्धृत है, वह नेवारी लिपि में उन्हीं प्रकीर्ण पत्रों से लिया गया है। फिर भी 8 श्लोकों के बिना यह ग्रन्थ अपूर्ण ही रह जाता है।

यह ग्रन्थ यद्यपि योगक्रिया से संबन्ध रखता है, जैसा कि ग्रन्थकार ने 9वें श्लोक में स्पष्ट कहा है—

गत्यागत्यादिकमिह यथा वस्त्वभावेऽपि मोहा-
न्मायास्वप्नप्रतिममपरं जन्म चास्ते तथैव ।
तन्मिथ्यादृक्पतितवचनात् संशयं चाप्यपास्य
प्राज्ञैर्योगाभ्यसनविधिना जन्मनाशो विधेयः ॥

तथापि जन्ममरण से छुटकारा पाने के लिये दार्शनिक सिद्धान्तों के साथ समन्वय करते हुए
श्वासप्रक्रिया पर नियन्त्रण इसका उद्देश्य है । ग्रन्थ अपने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

7. स्वाधिष्ठानप्रभेदः

ग्रन्थ—स्वाधिष्ठानप्रभेद

ग्रन्थकार—आर्यदेव

विशेष—इस ग्रन्थ का संक्षिप्त विवरण हम 'धो:' के अंक 4, पृष्ठ 22 पर दे चुके हैं, किन्तु
कई विद्वानों ने इसकी महत्ता और दुर्लभता को देखते हुए इसे संपूर्ण ही 'धो:' में प्रकाशित कराने
का आग्रह किया है, अतः यह पूर्ण ग्रन्थ यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है—

ज्ञानमूर्ति नमस्कृत्य सर्वदृष्टिविदारकम् ।
स्वाधिष्ठानप्रभेदोऽयं वक्ष्यते कृपया मया ॥ 1 ॥

अस्तीति कल्पना यावत् तावच्छाश्वतकल्पना ।
शाश्वताभिनिवेशोऽयं नेदं मायास्वलक्षणम् ॥ 2 ॥

नास्तीति कल्पना यावत् तावदुच्छेदकल्पना ।
उच्छेदाभिनिवेशोऽयं नेदं मायास्वलक्षणम् ॥ 3 ॥

अस्तिनास्तित्वनिर्मुक्ता मध्यमा या तु कल्पना ।
मध्यमाभिनिवेशोऽयं नेदं मायास्वलक्षणम् ॥ 4 ॥

यत् सत्यं संवृतिः प्रोक्तं बुद्धानां कायलक्षणम् ।
सेयं माया समुद्दिष्टा स्वाधिष्ठानमिहोच्यते ॥ 5 ॥

येन व्यासमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
यो नाप्यतेऽल्पपुण्यैस्तु व्याकृते(तै)रेव लभ्यते ॥ 6 ॥

नात्र शौचं न नियमो न तपो न च दुष्करम् ।
अदुष्करैरनियमैः सुखैर्हसै(र्वै)श्च सिद्ध्यति ॥ 7 ॥

एवं विज्ञाय तत्त्वज्ञो यं स्मरेच्च मुहुर्मुहुः ।
 सिद्धयते तस्य बुद्धत्वं सर्वं मायाविकुर्वितैः ॥ 8 ॥
 मायास्थं च सदा देवाः पालयन्तीह योगिनः ।
 सर्वज्ञेयं भवत्येव मायोपमसमाधिना ॥ 9 ॥
 वज्रायुधं महावीर्यं सर्वमारोग्यसत्सुखम् ।
 बुद्ध-ऋद्धि च संप्राप्य यात्युत्पतति स्वेच्छया ॥ 10 ॥
 वशमायान्ति सत्त्वाश्च दर्शनेनैव चोदिताः ।
 लभते वाञ्छितं सर्वं मायोपमसमाधिना ॥ 11 ॥
 स्वप्नमायोपमान् धर्मान् बौद्धाः सर्वे वदन्त्यपि ।
 सत्यं ते न प्रजानन्ति स्वाधिष्ठानबहिर्मुखाः ॥ 12 ॥
 वायुविज्ञानसंयुक्तं छायाकार(रं) मनोमयम् ।
 स्वज्ञानं ते न पश्यन्ति [माया]दृष्टान्तमोहिताः ॥ 13 ॥
 अनन्तेष्वपि कल्पेषु श्रुतिपारङ्गतैरपि ।
 गुरुवक्त्राद् विना माया साक्षात्कर्तुं न शक्यते ॥ 14 ॥
 तस्मान्मानं परित्यज्य बुद्धत्वफलकाङ्क्षया ।
 वज्रयानं समारुह्य यत्नेनाराधयेद् गुरुम् ॥ 15 ॥
 इदानीं च प्रवक्ष्यामि क्रमभेदं सुदुर्लभम् ।
 यं ज्ञात्वा विचरेद् योगी सर्वबुद्धमयो भवेत् ॥ 16 ॥
 पृथिव्यादीनि चत्वारि तथा शून्यचतुष्टयम् ।
 विनाशोत्पत्तिहेतवः ॥ 17 ॥
¹प्रभास्वरान्महाशून्यं तस्माच्चोपायसंभवः ।
 तस्मादुत्पद्यते प्रज्ञा तस्याः पवनसंभवः ॥ 18 ॥
 पवनादग्निसंभूतिरग्ने[श्च] जलसंभवः ।
 जलाच्च जायते पृथ्वी सत्त्वानामेष संभवः ॥ 19 ॥
 भूधातुर्लीयते तोये तोयस्तेजसि लीयते ।
 तेजश्च सूक्ष्मधातौ च वायुश्चित्ते विलीयते ॥ 20 ॥
 चित्तश्चैतसिके लीये[ता]विद्यायां तु चे(चै)तसम् ।
 सोऽ(सा)पि प्रभास्वरं गच्छेन्नरोधोज्यं भवत्रये ॥ 21 ॥

1. यहाँ से चार श्लोक (18-21) सेकोद्देशटीका (पृ० 51-52) में आयदेवपाद और आयपाद के नाम से उद्धृत हैं ।

अनादिकालिकं ह्येवं भवचक्रं प्रवर्तते ।
 यावन्न पश्यत्यात्मानं मायोपमसमाधिना ॥ 22 ॥
 स्वसंवेद्यो(द्या) हि सा माया तार्किकाणामगोचरा ।
 निजदेहस्थितौ चापि मन्दपुण्यो(ण्यैः) न लभ्यते ॥ 23 ॥
 ज्ञायते परमेकेन स्वदेहे साऽविकारिणी ।
 गुरुपादप्रसादेन दृष्टान्तरूपलक्षिता ॥ 24 ॥
 निधयो मणयश्चापि पृथिव्यामुदकं यथा ।
 विद्यमाना न दृश्यन्ते तथा देहेषु सर्ववित् ॥ 25 ॥
 मायामरीचिर्गन्धर्वनगरः शक्रकार्मुकम् ।
 दर्पणः(ण)प्रतिबिम्बश्चोदकचन्द्रः[.] प्रतिध्वनिः ॥ 26 ॥
 स्वप्नमायाभूपटलं विद्युद्बुद्बुदसंज्ञिता ।
 माया द्वादशदृष्टान्तैर्विस्तरा चैकलक्षणा ॥ 27 ॥
 आसां विस्पष्टतारूपं यद्देवतालम्बनं प्रति ।
 मायात्रयं समुद्दिष्टं यत्नतस्तत्प्रकीर्त्यते ॥ 28 ॥
 दर्पणप्रतिबिम्बं च शक्रचापमथापरम् ।
 तृतीयं जलचन्द्रं च मूर्तिमेतैर्विभावयेद् ॥ 29 ॥
 सूतके यत्समुद्दिष्टं यच्च बुद्धकुलं महत् ।
 तत्तत्कुलसमुद्भूता देवताश्च पृथग्विधाः ॥ 30 ॥
 दूतदूत्यस्तथा क्रोधाश्चेष्टचेष्टश्च किङ्कराः ।
 न ते सन्ति न भाः(ताः) सन्ति सत्त्वार्थं प्रति दर्शिताः ॥ 31 ॥
 एतत्सर्वं हरेद् योग(गी) संहरेदपि चात्मना ।
 मायोपमसमाधिस्थो मण्डलाद्यपि विस्तरम् ॥ 32 ॥
 वर्णान् नानाविधांश्चापि स्वाधिष्ठानेन योजयेत् ।
 शोकं भयं विरागं च सन्त्रासं स्वलितं तथा ॥ 33 ॥
 दुष्टं च दौर्मनस्यं च दुर्दृष्टं दुष्कृतं तथा ।
 दुर्गन्धं दूरसं चापि दुःस्पर्शं चैव यद् भवेत् ।
 तास्ता विरूपाः प्रकृतां(तीः) स्वाधिष्ठानेन शोधयेत् ॥ 34 ॥
 विष्णून्नादिप्रवृत्तिश्च ज्वराद्या व्याधयश्च ये ।
 स्वाभाविका जराद्याश्च तेषां माया चिकित्सितम् ॥ 35 ॥

येन धर्मेण बालानां संसारो भुवि वर्धते ।
 1 योगिनस्तेन धर्मेण संसारो न विवर्धते ॥ 36 ॥
 सुखाः कामगुणाः पञ्च बालानां बन्धने मताः ।
 योगिनस्तेन धर्मेण बुद्धत्वं साधयेत् पुनः ॥ 37 ॥
 रागो हर्षस्तथा प्रीतिर्मेत्री च करुणा तथा ।
 उपेक्षा मुदिता चैव बलमुत्साह एव च ॥ 38 ॥
 शौर्यं वीर्यं तथा रौद्रं हठत्वं साहसं तथा ।
 स्वरूपाः प्रकृतीश्चान्याः स्वाधिष्ठानेन संच(ह)रेत् ॥ 39 ॥
 एकमुद्रासमायुक्तश्चतुर्मुद्रायुतोऽथवा ।
 अन्तःपुरगतो वापि स्वाधिष्ठानमनुस्मरेत् ॥ 40 ॥
 रूपं शब्दं तथा गन्धं रसं स्पर्शं च शोभनम् ।
 अनुभूयात् सदा योगी महासुखपदे स्थितः ॥ 41 ॥
 ततं चैवावनद्धं च घण्टं शुषिरमेव च ।
 वाद्यं चतुर्विधं योगी स्वाधिष्ठानेन निर्विशेत् ॥ 42 ॥
 शृङ्गारादीन् रसान् सर्वान् नवनाटकसंज्ञकान् ।
 अनुभूयात् सदा योगी मायोपमसमाधिना ॥ 43 ॥
 योगतन्त्रे समुद्दिष्टाश्छोमाद्या ये च विस्तराः ।
 तांश्च प्रवर्तयेद् योगी माययाऽनुपलम्भतः ॥ 44 ॥
 उन्मिषन् निमिषन् वापि हसन् जल्पंस्तथैव च ।
 गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् भुञ्जन् मायादेहमनुस्मरेत् ॥ 45 ॥
 जगत्यन्याश्च याः क्रीडा नानासङ्कल्पकल्पिताः ।
 विचरेत् ताश्च तत्त्वज्ञो महारागनये स्थितः ॥ 46 ॥
 स्वाधिष्ठानमिदं प्राप्य सर्वदृष्टिविदारणम् ।
 सर्वं कुर्यान्न कुर्याद् वा यथाहचितचेष्टितः ॥ 47 ॥
 चैत्य कर्म न कुर्वीत न च पुस्तकवाचनम् ।
 करोतु वाचयेच्चापि स्वाधिष्ठानक्रमेण तु ॥ 48 ॥
 देवान् न वन्दयेदेवं भिक्षुश्चापि न वन्दयेत् ।
 अथवा वन्दयेत् सर्वान् स्वाधिष्ठानक्रमेण तु ॥ 49 ॥

1. "योगिनः....कर्म शुभानि यद्वत्" (श्लो० 36-55) ये सभी श्लोक गुह्यदि-अष्टसिद्धिसंग्रह में प्रकाशित अन्तिम सिद्धि (पृ० 212-213) में मुद्रित हैं ।

मन्त्रन्यासं न कुर्वीत मुद्राबन्धं तथैव च ।

मन्त्रजापं न कुर्याद्वा कुर्याच्च प्रतिबिम्बवत् ॥ 50 ॥

मदीयं दृश्यते चित्तं बाह्यमर्थं न विद्यते ।

एवं वै भावयेन्मायां तथतामप्यनुस्मरेत् ॥ 51 ॥

अनन्तध्यानविधिना मन्त्रमूर्तिसमाधिना ।

यदि माया न लब्धा स्यात् सर्वभूमिफलाय वै ॥ 52 ॥

देहभोगप्रतिष्ठा च भूमिपारमितादयः ।

बुद्धश्रद्धाविकुर्वादि सर्वं मायाविचेष्टितम् ॥ 53 ॥

आदर्शबिम्बे सकलं स(सु)युक्तं रूपं यथा स्वच्छतरं विभाति ।

अशीत्यनुव्यञ्जनलक्षणाढ्यो देहस्तथा वज्रधरः सदैव ॥ 54 ॥

¹ इन्द्रायुधं वियति दृष्टमनेकवर्णं लोकस्य दर्शयति कर्म शुभानि यद्वत् ।

एवं च वज्रधृगवाप्य सितादिवर्णं [सम्पा]दयत्यविकलं खलु [कर्म] तद्वत् ॥ 55 ॥

यद्वैमरूप्यमणिशङ्खशिलाप्रवालवैडूर्यताम्ररजतादिषु संस्थितश्च ।

तत्रैव(क) एव हि शशी गगनोदरान्ताद्या(दा)वर्तमानवपुषा प्रतिभाति यद्वत् ॥ 56 ॥

एवं स नाथः खलु चित्तवज्रो नानाविधस्तिष्ठति जन्तुवर्गे ।

स चाप्ययं स्वात्मनि विश्वरूपो मायामयो व्याप्तसमस्तलोकः ॥ 57 ॥

रूपादिपञ्चकमथायतनानि यानि अष्टादशेति चोदिताः खलु धातवश्च ।

ज्ञानानि पञ्च विषयाश्च जगत्समस्तं मायामयः स इह वज्रधरोऽपि नान्यत् ॥ 58 ॥

यं पर्वता अष्टमहासमुद्रा द्वीपाश्च सर्वे नरकादिभेदाः ।

यत् स्थावरं जङ्गममेव दृष्टं तत्तत् स्वयं सर्वविदेव नान्यत् ॥ 59 ॥

एवं स्वचित्तमयमेव जगत्समस्तं विज्ञाय मोक्षभवकल्पनया विमुक्ताः ।

ये न भ्रमन्ति भवकल्पमहार्णवेषु तेभ्यो नमोऽस्त्वखिलसंस्कृतपारगेभ्यः ॥ 60 ॥

॥ स्वाधिष्ठानप्रभेदः समाप्तः । कृतिरियमायं देवपादानाम् ॥

1. अमृतकणिकाकारस्य नामसंगीतिटिप्पण्याधारेण पूरितोऽत्र पाठः ।

लुप्त बौद्ध वचन संग्रह

—डॉ० बनारसीलाल—

[इस शीर्षक के अन्तर्गत 'घीः' के पिछले अंकों में अनेक ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों के लुप्तप्राय वचनों का संग्रह किया गया था। प्रस्तुत अंक में मध्यमकशास्त्र की व्याख्या प्रसन्नपदा, बोधिचर्यावितारपंजिका तथा डाकिनीजालसंवररहस्य में उद्धृत तन्त्र एवं धारणियों के वचन संकलित किये गये हैं।]

आदिबुद्ध

¹च्युतेहि(वि)रागसंभूतिविरागाद् दुःखसंभवः ।
दुःखाद्धातुक्षयः पुंसां क्षयान्मृत्युरिति स्मृतः ॥

²गुणापर्यन्तस्तोत्र

²यतः प्रज्ञातत्त्वं भजति करुणा संवृतिमतः
तवाभून्निःसत्त्वं जगदिति यथार्थं विमृशतः ।
यदा चाविष्टोऽभूदंशबलजनन्या करुणया
तदा तेऽभूदार्ते सुत इव पितुः प्रेम जगति ॥

चक्रसंवर

³संवृत्या सत्त्वा अधोरेतसः, विवृत्या ऊर्ध्वरेतसः ।

चतुष्पीठ

⁴मन्त्रादात्मपीठम्, आत्मपीठात्परपीठम्, परपीठात्तत्त्वपीठम्, यावदेति तदिति बोधिचित्तम्
अवधूत्यां संवरेणेति पदसंचारक्रमः ।

1. डा० जा० सं० २०, पृ० 4.
2. बोधिचर्यावितारपंजिका पृ० 229. सम्पादक ने उक्त श्लोक को रत्नदासविरचित गुणापर्यन्त-स्तोत्र के 33वें श्लोक के रूप में इंगित किया है ।
3. डा० जा० सं० २०, पृ० 5.
4. डा० जा० सं० २०, पृ० 4.

तथागतगुह्यसूत्र

(1)

१यां च रात्रिं शान्तमते तथागतोऽनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः, यां च रात्रिमनुपादाय परिनिर्वास्यति, अत्रान्तरे तथागते नैकमप्यक्षरं नोदाहृतं न व्याहृतं नापि प्रव्याहरति नापि प्रव्याहरिष्यति । अथ च यथाधिमुक्ताः सर्वसत्त्वा नानाधात्वाशयास्तां तां विविधां तथागतवाचं निश्चरन्तीं संजानन्ति । तेषामेवं पृथक् पृथक् भवति—अयं भगवानस्मभ्यमिमं धर्मं देशयति, वयं च तथागतस्य धर्मदेशनां शृणुमः । तत्र तथागतो न कल्पयति न विकल्पयति । सर्वकल्पविकल्पजालवासनाप्रपञ्च-विगतो हि शान्तमते तथागतः ।

(2)

२अथ खलु शान्तमतिर्बोधिसत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत्—उपशम उपशम इति भगवन्बुध्यते, क एष उपशमो नाम ? कस्य चोपशमादुपशम इत्युच्यते ? भगवानाह—उपशम इति कुलपुत्र उच्यते क्लेशोपशमस्यैतदधिवचनम् । क्लेशोपशम इति संकल्पविकल्पपरिकल्पोपशमस्यैतदधिवचनम् । संकल्पविकल्पपरिकल्पोपशम इति संज्ञामनसिकारोपशमस्यैतदधिवचनम् । संज्ञामनसिकारोपशम इति विपर्ययोपशमस्यैतदधिवचनम् । विपर्ययोपशम इति हेत्वारम्बणोपशमस्यैतदधिवचनम् । हेत्वारम्बणोपशम इति अविद्याभवतृणोपशमस्यैतदधिवचनम् । अविद्याभवतृणोपशम इति अहंकारममकारोपशमस्यैतदधिवचनम् । अहंकारममकारोपशम इति उच्छेदशाश्वतदृष्ट्युपशमस्यैतदधिवचनम् । उच्छेदशाश्वतदृष्ट्युपशम इति सत्कायदृष्ट्युपशमस्यैतदधिवचनम् । इति शान्तमते ये केचिदारम्बणहेतुदृष्टिसंयुक्ताः संक्लेशाः प्रवर्तन्ते, सर्वे ते सत्कायदृष्टेरुत्पद्यन्ते, सत्कायदृष्ट्युपशमात् सर्वदृष्ट्युपशम इति । सर्वदृष्ट्युपशमात्सर्वप्रणिधानोपशम इति । सर्वप्रणिधानोपशमात्सर्वक्लेशोपशमः । तद्यथापि नाम शान्तमते वृक्षस्य मूले छिन्ने सर्वशाखापत्रफलानि शुष्यन्ति, एवमेव शान्तमते सत्कायदृष्ट्युपशमात्सर्वक्लेशोपशमोऽप्युत्पद्यते । सत्कायदृष्टौ शान्तमते अपरिज्ञातायां सर्वोपादानोपक्लेशो उत्पद्यते । सत्कायदृष्टिपरिज्ञातोऽपि सर्वोपादानोपक्लेशो नोत्पद्यते न बाधन्ते ।

शान्तमतिराह—का पुनर्भगवन् सत्कायदृष्टिपरिज्ञा ? भगवानाह—आत्मसमुत्थानं शान्तमते सत्कायदृष्टिपरिज्ञा सत्त्वासमुत्थानं जीवासमुत्थानं पुद्गलासमुत्थानं दृष्टिसमुत्थानं सत्कायदृष्टिपरिज्ञा । न खलु पुनः शान्तमते सा दृष्टिरध्यात्मं प्रतिष्ठिता, न बहिर्धा प्रतिष्ठिता । सा दृष्टिः सर्वतोऽप्रतिष्ठिता । यत्तस्या अप्रतिष्ठिताया दृष्टेरप्रतिष्ठितेति ज्ञानम्, इयं शान्तमते सत्कायदृष्टिपरिज्ञा । सत्कायदृष्टिपरिज्ञेति शान्तमते शून्यताया एतदधिवचनम् । यच्छून्यतानुलोमिकया क्षान्त्या तां दृष्टिं नोद्गृह्णाति, इयमपि

1. मध्यमकशास्त्रम् (बौ० सं० ग्र० 10), पृ० 236.
2. मध्यमकशास्त्रम् (बौ० सं० ग्र० 10), पृ० 153-54.

शान्तमते सत्कायदृष्टिपरिज्ञा । सत्काय इति शान्तमते शून्यतानिमित्ताप्रणिहितानभिसंस्काराजातानु-
त्पाददृष्ट्या तां दृष्टिं नोदगृह्णाति, इयमपि शान्तमते सत्कायदृष्टिपरिज्ञा । सत्काय इति शान्तमते अकाय
एषः, न कसति न विकसति न चिनोति नोपचिनोति, आदित एव तदभूतं परिकल्पितम्, यच्च अभूतं
परिकल्पितम्, तन्न परिकल्पितम्, न परिकल्प्यते न विकल्प्यते, तन्न क्रियते न विठप्यते, नोत्थाप्यते
नाध्यवस्यते । तदुच्यते उपशम इति ।

शान्तमतिराह—उपशान्त उपशान्त इति भगवन्नुच्यते, कस्योपशमादुपशान्त इत्युच्यते ?
भगवानाह—आरम्बनतः शान्तमते चित्तं ज्वलति । यन्न भूय आलम्बनीकरोति तन्न ज्वलति,
अज्वलन् उपशान्त इत्युच्यते । तद्यथापि नाम शान्तमते अग्निरूपादानतो ज्वलति, अनुपादानतः
शाम्यति एवमेव आलम्बनतश्चित्तं ज्वलति अनालम्बनतः शाम्यति । तत्र शान्तमते उपायकुशलोज्यं
बोधिसत्त्वः प्रज्ञापारमितापरिशुद्धः आलम्बनसमतां च प्रजानाति कुशलमूलालम्बनं च शमयति ।

बोधिचित्तविवरण

¹देशना लोकनाथानां सत्त्वाशयवशानुगाः ।
भिद्यन्ते बहुधा लोक उपायैर्बहुभिः पुनः ॥
गम्भीरोत्तानभेदेन क्वचिच्चोभयलक्षणा ।
भिन्ना हि देशना भिन्ना शून्यताद्वयलक्षणा ॥

रत्नचूडामणिमहायानसूत्र

²सर्वाकारवरोपेता शून्यता भावनीया योगिनेति ।

लूयीपाद

³मलापगतचित्तस्य तत्राभ्यन्तरसंस्थितः ।
उष्णबिम्बमहातेजाः प्रलयानलसंनिभः ॥
चतुर्विंशतिवर्णेन करङ्को बलिमण्डितः ।
विज्ञानाष्टनिरोधेन स्मशानं परिवेष्टितः ॥
तन्मध्ये भावयेद् धीमान् ज्ञानविज्ञानसंभवम् ।
ज्ञानेन तु करङ्काख्यं विज्ञानं ता(तो)रणं मतम् ॥

1. सर्वदर्शनसंग्रह, पृ० 45. भाण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीच्यूट, पूना 1978.
2. डा० जा० सं० २०, पृ० 9.
3. दुर्लभ ग्रन्थ परिचय, पृ० 33.

तस्योपरि स्थितं चन्द्रं शीतबिम्बं सुनिर्मलम् ।
 षोडशस्वरसंभूतं छत्रं करङ्क्या कृतम् ॥
 तन्मध्ये भावयेद्योगी षड्भिर्डाकस्वभावतः ।
 धर्माक्षरस्वरूपाख्यं कायत्रयैकसंवरम् ॥
 तस्य पार्श्वस्थितं दिव्यं षड्भिः योगिनीसंभवः ।
 धर्ममुख्येति विख्याता(तं) रहस्यं परमं पदम् ॥
 चिन्तनीयं द्वयं बीजमासक्तमनुरक्तयः ।
 महारागानुरागेण घनानन्दं प्रदर्शयेत् ॥
 ऊकारस्तु हकाराधो हकारश्चन्द्रलेखयोः ।
 चन्द्रलेखागतं बिन्दौ तिष्ठेद् बिन्दु सुनिर्मलम् ॥
 निराभासं निरालम्बं निर्निमित्तं निरञ्जनम् ।

वज्रपञ्जर

‘षडङ्गं भावयेत्’ तस्मात् स्वाधिष्ठानसमं ततः ।
 सर्वाङ्गसुन्दरं रम्यं सर्वासङ्गविवर्जितम् ॥
 रम्यं तु डाकिनीचक्रं स्वाधिष्ठानं महाद्भुतम् ।
 यदुदेति क्षणेनैव गुरुपादप्रसादतः ॥

वज्रमण्डधारणी

तद्यथा मञ्जुश्रीः काण्डं च प्रतीत्य मथनीं च प्रतीत्य पुरुषस्य हस्तव्यायामं च प्रतीत्य धूमः प्रादुर्भवतीत्यग्निरभिनवर्तते । स चाग्निसंतापो न काण्डसंनिश्चितो न मथनीसंनिश्चितो न पुरुष-हस्तव्यायामसंनिश्चितः । एवमेव मञ्जुश्रीरसद्विपर्यासमोहितस्य पुरुषपुद्गलस्य उत्पद्यते रागपरिदाहो द्वेषपरिदाहो मोहपरिदाहः । स च परिदाहो नाध्यात्मं न बहिर्धा नोभयमन्तरेण स्थितः ।

अपि तु मञ्जुश्रीः यदुच्यते मोह इति, तत्केन कारणेनोच्यते मोह इति ? अत्यन्तमुक्तो हि मञ्जुश्रीः सर्वधर्मेर्मोहस्तेनोच्यते मोह इति । तथा नरकमुखा मञ्जुश्रीः सर्वधर्मा इदं धारणीपदम् । आह—कथं भगवन्निदं धारणीपदम् ? आह—नरका मञ्जुश्रीः बालपृथग्जनैरसद्विपर्यासविठपिताः स्वविकल्पसंभूताः । आह—कुत्र भगवन्नरकाः समवसरन्ति ? भगवानाह—आकाशसमवशरणा मञ्जुश्रीः

1. डा० जा० सं० २०, पृ० ८.

2. ‘षडङ्गं भावयेद्’ इतना अंश लु० बौ० व० सं०, पृ० ५७ में संगृहीत हुआ है ।

3. मध्यमकशास्त्रम् (बौ० सं० ग्र० १०) पृ० १६-१७.

नरकाः । तर्हि मन्यसे मञ्जुश्रीः स्वविकल्पसंभूता नरका उत स्वभावसंभूताः ? आह—स्वविकल्पेनैव भगवन् सर्वबालपृथग्जना नरकतिर्यग्योनियमलोकं संजानन्ति । ते च असत्समारोपेण दुःखां वेदनां वेदयन्ति दुःखमनुभवन्ति त्रिष्वप्यपायेषु ।

तथा चाहं भगवन् नरकान् पश्यामि तथा नारकं दुःखम् । तद्यथा भगवन् कश्चिदेव पुरुषः सुप्तः स्वप्नान्तरगतो नरकगतमात्मानं संजानीते स तत्र क्वथितायां संप्रज्वलितायामनेकपौरुषायां लोहकुम्भ्यां प्रक्षिप्तमात्मानं संजानीयात् । स तत्र खरां कटुकां तीव्रां दुःखां वेदनां वेदयेत् । स तत्र मानसं परिदाहं संजानीयात् उत्त्रसेत् संत्रासमापद्येत । स तत्र प्रतिबद्धः समानः—अहो दुःखम्, अहो दुःखम् इति क्रन्देत् शोचेत् परिदेवेत् । अथ तस्य मित्रज्ञातिसालोहिताः परिपृच्छेयुः—केन तत्ते दुःखमिति । स तान् मित्रज्ञातिसालोहितानेवं वदेत् नैरयिकं दुःखमनुभूतम् । स तानाक्रोशेत् परिभाषेत्—अहं च नाम नैरयिकं दुःखमनुभवामि, यूयं च मे उत्तरि परिपृच्छथ केनैतत्तव दुःखमिति । अथ ते मित्रज्ञातिसालोहितास्तं पुरुषमेवं वदेयुः—मा भैर्भोः पुरुष । सुप्तो हि त्वम् । न त्वमितो गृहात् क्वचिन्निर्गतः । तस्य पुनरपि स्मृतिरुत्पद्यते—सुप्तोऽहमभूवम् । वितथमेतन्मया परिकल्पितमिति, स पुनरपि सौमनस्यं प्रतिलभते ।

तद्यथा भगवन् स पुरुषोऽसत्समारोपेण सुप्तः स्वप्नान्तरगतो नरकगतमात्मानं संजानीयात्, एवमेव भगवन् सर्वबालपृथग्जना असद्भ्रागपर्यवनद्धाः स्त्रीनिमित्तं कल्पयन्ति । ते स्त्रीनिमित्तं कल्पयित्वा ताभिः सार्धं रममाणमात्मानं संजानन्ति । तस्य बालपृथग्जनस्यैवं भवति—अहं पुरुषः, इयं स्त्री, ममैषा स्त्री । तस्य तेन च्छन्दरागपर्यवस्थितेन चित्तेन भोगपर्येष्टिं चित्तं क्रामयति । स ततो निदानं कलहविग्रहविवादं संजनयति । तस्य प्रदुष्टेन्द्रियस्य वैरं संजायते । स तेन संज्ञाविपर्ययेन कालगतः समानो बहूनि कल्पसहस्राणि नरकेषु दुःखां वेदनां वेदयमानमात्मानं संजानाति ।

तद्यथा भगवान् तस्य पुरुषस्य मित्रज्ञातिसालोहिता एवं वदन्ति—मा भैः, मा भैः, भो पुरुष । सुप्तो हि त्वम् । न त्वमितो गृहात् कुतश्चिन्निर्गत इति । एवमेव बुद्धा भगवन्तश्चतुर्विपर्ययासविपर्यस्तानां सत्त्वानामेवं धर्मं देशयन्ति—नात्र स्त्री न पुरुषो न सत्त्वो न जीवो न पुरुषो न पुद्गलः । वितथा इमे सर्वधर्माः । असन्त इमे सर्वधर्माः । विठपिता इमे सर्वधर्माः, मायोपमा इमे सर्वधर्माः । स्वप्नोपमा इमे सर्वधर्माः । निर्मितोपमा इमे सर्वधर्माः । उदकचन्द्रोपमा इमे सर्वधर्माः । इति विस्तरः । ते इमां तथागतस्य धर्मदेशनां श्रुत्वा विगतरागान् सर्वधर्मान् पश्यन्ति । विगतमोहान् सर्वधर्मान् पश्यन्ति अस्वभावाननावरणान् । ते आकाशस्थितेन चेतसा कालं कुर्वन्ति । ते कालगताः समाना निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वान्ति । एवमहं भगवन् नरकान् पश्यामि । इति ।

समन्तभद्र

१ आकाशयवयोगेन गृह्णन्ति ज्ञानसागराः ।
 अथ वज्रधरो राजा महासुखविवर्धनम् ॥
 समयं देशयेत् सर्वं बुद्धत्वफलदायकम् ।
 सुखैर्हृष्टैस्तथा नृत्यैर्गीतवाद्यैर्विकुर्वणैः ॥
 गन्धमाल्यविलेपनस्तु विद्याराजः प्रसिद्धयति ।
 यथा सुखं सुखं वाद्ये यथा रुचितचेष्टितम् ॥
 यथाहारविहारोऽपि सिद्धयते परमाक्षरम् ।
 खानपानप्रयोगैस्तु दिव्यालङ्कारभूषणैः ॥
 सिद्धयते परमं तत्त्वं दिनेनैकेन चोदितः ।
 नित्यं स्वसमयः साध्यो नित्यं पूज्यास्तथागताः ॥
 नित्यं च गुरवे देयं तस्माद् बुद्धसमो गुरुः ।
 यथा वैरोचनो नाथस्तथा वज्रधरो गुरुः ॥
 यथाकाशो महाराजो वज्रधर्मो महामुनिः ।
 समन्तराजो यथा नाथस्तथाचार्यः प्रगीयते ॥
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वज्राचार्यं महागुरुम् ।
 प्रच्छन्नवरकन्यासं नावमन्यात् कदाचन ॥

२ समाज

त्रिसाहस्रिके श्रीसमाजे बुद्धो भगवानाह—

३ वज्रपर्यङ्कतश्चित्तं मण्यन्तर्गतमीक्षयेत् ।
 निष्पन्दादिसुखापूर्णं वैमल्यं यावदेति तत् ॥

४ संवरतन्त्र

५ सर्वत्र सर्वतः सर्वं सर्वथा सर्वदा स्वयम् ।
 सर्वरत्नादिवल्लोके सर्वभावान्(भावो) भवत्यसौ ॥

1. डा० जा० सं० २०, पृ० 11

2. गुह्यसमाजतन्त्र में यह वचन प्राप्त नहीं होता है ।

3. डा० जा० सं० २०, पृ० 3.

4. ज्ञानसिद्धि 8.1-9 के ये श्लोक संवरतन्त्र के हो सकते हैं । 'सर्वाकाशावकाशे श्रीवज्रसत्त्व-
स्तथागतः' यह वचन संवरतन्त्र के नाम से धीः 9, पृ० 41 में प्रकाशित किया है । संवरतन्त्र
सम्भवतः चक्रसंवरतन्त्र ही है ।

5. गु० अ० सि०, पृ० 152-53

बुद्धक्षेत्रेषु सर्वेषु बुद्धनिर्माणमावहन् ।
 दर्शय बुद्धकार्याणि बुद्धनिर्माणमायया ॥
 बुद्धवज्रधरादीनां विश्वरूपत्रिधात्मकैः ।
 त्रैधातुकमहाराज सर्वकार्याणि दर्शय ॥
 सन्धिविग्रहयुद्धं हि राज्यं मायाविकुर्वितम् ।
 त्रैधातुक महाराज अवष्टम्भय साहसैः ॥
 प्रमादोऽयं जगत् सर्वं विश्वनर्तितं दर्शय ।
 एवमाद्यैरनन्ताग्रैः धर्मधातुसमासमैः ॥
 आकाशधातुपर्यन्तैः सर्वतो विश्वसंवरेः ।
 सर्वाकाशावकाशैः श्रीवज्रसत्त्वस्तथागतः ॥
 विक्रीडति विचित्रैः श्रीरतिक्रीडाविकुर्वितैः ।
 सर्वतो विश्वविनयैः सत्त्वधातुं प्रसाधयेत् ॥
 एवमाद्यास्त्वनन्ताग्राः धर्मधातुसमासमाः ।
 आकाशधातुपर्यन्ताः सर्वबुद्धादयो वराः ॥
 सर्वाकाशावकाशे श्रीवज्रसत्त्वे प्रतिष्ठिताः ।
 समाविशन्ति सर्वात्मा सिद्धैश्वर्यप्रसिद्धिभिः ॥

संवरोत्तरे

¹कामसिद्धिरित्युक्ता भगवता प्रज्ञातन्त्रत्वात् ।

बौद्ध पारिभाषिक शब्दों का अभिप्राय

—ठिनलेराम शाशनी—

['घीः' के पिछले अंकों में इस स्तम्भ के अन्तर्गत अनेक ग्रन्थों से विशिष्ट पारिभाषिक शब्दों की व्याख्याएँ संकलित की गई हैं। प्रस्तुत अंक में आचार्य रविश्री कृत "अमृतकणिकानाम श्रीनामसंगीतिटिप्पणी" तथा "डाकिनीजालसंवररहस्यम्" से पारिभाषिक व्याख्याओं का संकलन किया जा रहा है। "अमृतकणिका" की पाण्डुलिपि डा० बनारसीलाल से प्राप्त हुई है, जो अभी अप्रकाशित है।]

अकारः

तद्यथा भगवान् बुद्धः संबुद्धोऽकारसम्भवः ।

अकारः सर्ववर्णाग्रयो महार्थः परमाक्षरः ॥ (अमृतकणिका, पृ० 145)

अकारेणात्र प्रकृतिप्रभास्वरा महामुद्रा सहजानन्दरूपिणी प्रज्ञापारमिता उच्यते । सा च परमाणुधर्मतातीता आदर्शप्रतिसेनातुल्या । ततः सम्भवतीत्यकारसंभवः सम्यक्सम्बुद्धः प्रज्ञोपायात्मको वज्रसत्त्वो नपुंसकपदं सहजकाय इत्युच्यते । स चाकारः सर्ववर्णानामग्रयोऽनाहतत्वान्निरावरणत्वेन स्कन्धधात्वायतनविषयैकलोलीभावात् । उक्तं च—

ज्वलन्तं दीपसदृशं हृदि मध्यमनाहतम् ।

अक्षरं परमं सूक्ष्मं महार्थं परमं प्रभुम् ॥

महामुद्रा स्थिता नाभौ ज्वलद्दीपशिखाकरा ।

आदिस्वरस्वभावा सा धीति बुद्धैः प्रकीर्तितेति ॥

सकलबुद्धगुणदायकत्वान्महार्थः । अत एव परमाक्षर उत्पादनिरोधरहितः ।

(अ० क०, पृ० 207)

अक्षोभ्यः

स च मणिवरटकावस्थितो निस्पन्दावस्थिताऽक्षोभ्यः, सकलतथागतवज्रकायत्वेन च्यवन-दुःखाभावात् । (अ० क०, पृ० 204-205)

महाद्वेषो अक्षोभ्यः । (अ० क०, पृ० 209)

अग्रपुद्गलः

महामुखात्मकज्ञानकायत्वाद् अग्रपुद्गलः । (अ० क०, पृ० 321)

अचलः

विकल्पवायूपरमादचलः । (अ० क०, पृ० 247)

अज्ञानम्

अज्ञानमविद्यावासना । (अ० क०, पृ० 188)

अथ

अथेति अकारेणात्र नैरात्म्यप्रतिपादकत्वेन सर्वाकारवरोपेता शून्यता प्रोक्ता । थकारेणाप्यक्षो-
भ्यस्वभावप्रतिपादनेन निरालम्बकरुणा ।तयोरद्वैधाद् मणिवरटकान्तःस्थित-
सहजानन्दशुक्रमेव शब्दाभिधेयमथेत्युच्यते । (अ० क०, पृ० 178)

अद्वयम्

अद्वयं शून्यताकरुणाभिन्नप्रज्ञोपायाद्वयं समाधिसम्भूतं महासुखस्वरूपं मन्त्रनीतौ । पारमितानये
तु आत्मात्मीयग्राह्यग्राहकादिसकलमनोविस्पन्दरहितं सर्वधर्मनैरात्म्यस्वरूपस्वाभाविकाया-
त्मकचित्तम् । (अ० क०, पृ० 200)

अद्वयवादी

अद्वयः सुखशुकाद्वैधरूपः, तद्रूपप्रकाशनादद्वयवादी । (अ० क०, पृ० 236)

अनक्षरः

अच्युतकरुणारसपूर्णत्वादनक्षरः । (अ० क०, पृ० 262)

अविद्यमानवाच्यवाचकसम्बन्धेन धर्मधातुपरमाक्षरयोगात्मा अनक्षरः । (अ० क०, पृ० 313)

परमार्थरूपत्वादनक्षरः । (अ० क०, पृ० 314)

अनङ्गकायः

चूडामणिचक्रगतत्वेनानङ्गकायो धर्मधातुर्वज्रानङ्गः । (अ० क०, पृ० 312)

अनागामी

अनागामी क्लेशावशादसंसारित्वात् । (अ० क०, पृ० 239)

अनादिनिधनः

धर्मधातुज्ञानरूपत्वेन न विद्येते आदिनिधने उत्पादनिरोधौ विरमच्युतिक्षणौ यस्य स तथा ।

(अ० क०, पृ० 287)

अनादिः

अनादिराद्युत्पन्नो निष्प्रपञ्चः सर्वासत्संकल्पवर्जितः । (अ० क०, पृ० 235)

अनुत्तरः

चतुर्थाभिसम्बोधिरूपत्वादनुत्तरः । (अ० क०, पृ० 313)

अनुस्मृतिः

अनुस्मृतिर्नाम स्वेष्टदेवतादर्शनं प्रतिबिम्बाकारं विकल्परहितं तस्मादनेकरस्मिस्फुरद्रूपाकारं प्रभामण्डलम् । ततोऽनेकाकारस्फुरद्रूपां(पं) त्रैधातुकं स्म(स्फ)रणमित्यनुस्मृत्यङ्गमुच्यते ।

(डाकिनीजालसंवररहस्य, पृ० 6)

अपराजितः

सर्वकायवाक्चित्तैक्येनाच्युतबोधिचित्तत्वेन परैर्विकल्पोर्मिभिर्न जीयत इत्यपराजितः ।

(अ० क०, पृ० 288)

अप्रतिष्ठितनिर्वाणम्

विरमानन्दः संसारत्वात् प्रतिष्ठितः । मण्यग्रात् पतनान्निर्वाणम्, तद्भावान्न विद्यते प्रतिष्ठितं च निर्वाणं च यस्य स तथा । (अ० क०, पृ० 263)

अभवोद्भवः

शून्यतासम्भूतचतुःकायत्वादभवोद्भवः । (अ० क०, पृ० 330)

अभिषेकः

कुम्भो गुह्याभिषेकश्च प्रज्ञाज्ञानाभिधानकः ।

पुनरेव महाप्रज्ञा तस्या ज्ञानाभिधानकः ॥

कुम्भशब्देन स्तनौ उच्येते । तयोः स्पर्शनाद् यत् क्षरं क्षरमुखम्, स कलशाभिषेकः । गुह्यावज्जप्रवेशाद् यत् क्षरमुखं स गुह्याभिषेकः । पद्मे वज्रस्फारणाद् यत् क्षरमुखं स प्रज्ञा-भिषेकः । महामुद्रानुरागेण यदक्षरं मुखं चतुर्थं तत्पुनस्तथाभिषेकः संवरसिद्धये सन्ध्याभाषया चोक्तो भगवता । (डा० जा० सं० २०, पृ० 1)

अभिसमयः

अभिसमयः प्रभास्वरनिराभासज्ञानसाक्षात्कारः । (अ० क०, पृ० 331)

अमरेन्द्रः

नैरात्म्ये ऐरावतगतित्वेन पुरन्दरस्वभावत्वादमरेन्द्रः । (अ० क०, पृ० 318)

अमिताभः

प्रज्ञाज्ञानमेव मूर्तिः शरीरं यस्य स हृदि स्थितोऽमिताभः । (अ० क०, पृ० 205)

अमोघगतिः

अमोघाऽव्याहता गतिर्यस्य सोऽमोघगतिः । निरन्तराव्याहृतमहामुखशुक्रगत्यागतिस्वरूप इत्यर्थः । (अ० क०, पृ० 237)

अमोघपाशः

अमोघोऽवन्ध्यः पाश इव पाशः षडङ्गयोगलक्षणे यस्य स तथा, बोधिचित्तवज्रविनेयानां सत्त्वानां बिम्बदर्शनेन तथताप्रतिभासकत्वात् । (अ० क०, पृ० 252)

अमोघसिद्धिः

वाचा(चां) स्वरव्यञ्जनात्मिकानामीश्वरोऽनाहतस्वभावोऽमोघसिद्धिरूर्णाचक्रवर्ती ।

(अ० क०, पृ० 205)

अमोघः

अमोघमवन्ध्यमव्याहतसुखं जगदर्थम् । (अ० क०, पृ० 331)

अमोघोऽवन्ध्यः । (अ० क०, पृ० 252)

अहंन्

सम्यक्समाधिवशात् सकलविकल्पक्लेशानरीन् हतवान् (इत्यहंन्) । (अ० क०, पृ० 240)

अविद्या

अविद्या संसारवासना । (अ० क०, पृ० 267)

आगमः

महासुखत्वेनागमादागमः । (अ० क०, पृ० 331)

आत्मवित्

सर्वप्रपञ्चातिक्रान्तत्वेन गगनरूपत्वाद् आत्मवित् । (अ० क०, पृ० 321)

आत्मा

आत्मा निरालम्बस्वभावमचित्तचित्तम् । (अ० क०, पृ० 235)

आदिबुद्धः

सांक्लेशिकवैयवदानिकधर्माणां परमार्थतोऽभावेनाकारो निषेधार्थः । तेनादिबुद्धः । एकक्षण-पञ्चाकार-विशत्याकार-मायाजालाभिसम्बोधिलक्षणं सुखम् आदिबुद्ध इत्यर्थः ।

(अ० क०, पृ० 287)

आनन्दः

निर्विकल्पमहासौख्य आकाङ्क्षालक्षणार्थकः ।

आनन्दोऽसौ सुखागारद्वारदेहलिकोपमः ॥

अहो सौख्यं महासौख्यं अहो भुञ्जे कथं कथम् ।

इत्याकाङ्क्षापरं चित्तं स आनन्दोऽग्रणीरिव ॥ (अ० क०, पृ० 210)

आनन्दचतुष्टयम्

भगवता एकस्मिन्नेव वज्रदेहे एकत्रैवानन्दे आनन्दाश्चत्वार उपदर्शिताः । तत्र कायानन्द-
वागानन्द-चित्तानन्द-ज्ञानानन्दभेदेनेति । (डा० जा० सं० २०, पृ० २)

अ इ उ इति त्रयं कायवाक्चित्ताद्वयत्वेन आनन्दः । आ ई ऊ इति द्विरूपतया परमानन्दः ।
ए ओ अं इति त्रयं उभयस्वरात्मकं त्रिवज्रं विरमानन्दः । ऐ औ अः इति त्रयं वज्राभिन्नं
चतुर्थः सहजानन्दः । एतेन चतुरानन्दस्वभावो भगवाननुत्पादरूपो व्याख्यातः ।

(अ० क०, पृ० 204)

आवरणम्

तथा चोक्तमार्यवसुबन्धुपादैः—

“.....त्रीण्यावरणानि—कुशलानुत्पादः, अपरिपूर्णसम्भारता, अमनसिकारता च । तथा
सद्धर्म अगोचरम्, लाभसत्कारपूजायां गौरवम्, सर्वेषु अकारुण्यं चेति” ।
पुनश्चोक्तम्—“अप्रतिष्ठितनिर्वाणमप्यावरणं बोधिसत्त्वगोत्राणाम्” इति । तथा मोक्षाभिलाशो-
(षो)ऽपि बोधिसत्त्वानामावरणमिति विस्तरः । (डा० जा० सं० २०, पृ० ८)

उपेक्षा

उपेक्षा इत्यशेषकल्पनाकलङ्कापगमनात् । (डा० जा० सं० २०, पृ० १)

एकक्षणः

एकोऽद्वितीयः क्षणस्तुर्यातीतश्चतुरानन्दैकमूर्तिः सहजसम्बोधिलक्षणः । (अ० क०, पृ० 297)

कङ्कालः

कं सुखं कलयतीति कङ्कालः । (अ० क०, पृ० 255)

कमलम्

कमलं रजःशुक्रयोगेन सितरक्तगुणयुतं स्त्रीपद्मम् । (अ० क०, पृ० 184)

करुणा

गुह्ये वज्रप्रवेशात् ततः समधिकतया करुणा । (डा० जा० सं० २०, पृ० १)

कामः

कामो महारागः । स एव वज्रसत्त्वो महासत्त्वः परमाक्षरसुख इति ।

(डा० जा० सं० २०, पृ० ४)

कायः

यत्कायं सर्वबुद्धानां निराभासं निरञ्जनम् ।

अज्ञातमकृतं शुद्धमभावादिविवर्जितम् ॥ (अ० क०, पृ० 205)

कुलत्रयम्

कुलत्रयमिति कायवाक्चित्तचक्रम्, तेन नाभिचक्रे स्थितो वज्ररूपस्वभावो वैरोचनः ।
कर्णिकानाडीगतः पिता कायस्य बीजबिन्दुः । (अ० क०, पृ० 197)

कुलत्रयं कायवाक्चित्तानन्दपरमानन्दविरमानन्दरूपं यस्य स तथा । (अ० क०, पृ० 313)

कुलम्

कुलमद्वयत्वात् । (अ० क०, पृ० 197)

कुलिशेशः

कुलिशे वज्ररन्ध्रद्वयाभ्यन्तरे ओडियाने जालन्धरसंज्ञके महामुखस्वभावेन ईश्वरत्वात् ।

(अ० क०, पृ० 255)

कुलिशेश्वरः

कुलिशे वज्रशिखरपुरे स्थिरत्वेन ईश्वरत्वात् कुलिशेश्वरः । (अ० क०, पृ० 184)

कैवल्यज्ञानम्

कैवल्यज्ञानं शुद्धाद्वयधर्मतालक्षणं धर्मकायात्मकम् । (अ० क०, पृ० 242)

क्रोधराट्

क्रोधराट् विरमानन्दादनन्तरं राजत इति क्रोधराट्, महामुखस्वभावो मञ्जुश्रीरूपः ।

(अ० क०, पृ० 254)

क्रोधः

क्रोधेन सर्वधर्मशून्यतास्फुटीभावेन, क्रोधे विरमपर्यन्ते वा, “क्रोधो विरमपर्यन्तः” इति
पीठविवृतिः । (अ० क०, पृ० 187)

क्लेशधातुः (अष्टादश)

क्लेशधातवोऽष्टादश अस्थि-चर्म-मांस-रक्त-स्नायु-मज्जा-मेदः-शुक्र-श्लेष्म-विट्-मूत्र-खेट-सिंहा-
(घा)ण-यकृत्-प्लीहा-पिशित-मल-रोमाख्याः । (अ० क०, पृ० 310)

क्लेशः

क्लेशः च्युतिदुःखम् । (अ० क०, पृ० 188)

क्षितिगर्भः

क्षितिशब्देन पञ्चभूतोपलक्षणात् क्षितिगर्भो हेतुः, क्षितिगर्भः सहजानन्दबिन्दुः ।

(अ० क०, पृ० 296)

क्षोणालवः

बोधिचित्तप्रयोगेण तदुत्पादितदृष्टान्तदार्ष्टान्तिकावाच्यतत्त्वमुखत्वेन सकलपरिसमाप्तार्थत्वात्
सद्गुरूपदेशवशेन चतुर्थाभिषेकक्षणे तुर्यक्षणातीतत्वेन शिष्यस्य तत्क्षणात् एवातीवश्रद्धायोगेन
सकलविद्याप्रहाणात् क्षोणा आस्रवा यस्य यतो वा स तथा । (अ० क०, पृ० 240)

क्षेत्रम्

परिशुद्धनाडीचक्रात्मकत्वात् क्षेत्रम् । (अ० क०, पृ० 332)

गगनोद्भवः

स्वयम्भूरूपत्वाद् गगनोद्भवः । (अ० क०, पृ० 330)

गणपतिः

गणो मायोपमार्थरूपः, तथागतविद्याप्रभृतयो वा, तेषां पतिर्गणपतिः स्वामी, बोधिचित्त-
स्वभावत्वात् । (अ० क०, पृ० 238)

गणाचार्यः

गणानामानन्दपरमानन्दविरमानन्दानां आचार्यः सहजरूपोपदर्शकः । (अ० क०, पृ० 238)

गणेशः

गणानां पञ्चस्कन्धादीनां सहजरूपताऽऽपादनेन परमेश्वरत्वाद् गणेशः । (अ० क०, पृ० 238)

गोष्पतिः

गोर्ध्वनिः षडक्षरात्मक एकार आधारात्मकः, तस्य पतिः षष्ठो वंकारो वज्रधर आधेय-
स्वभावः । तथा च वक्ष्यति—

पञ्चाक्षरो महाशून्यो बिन्दुशून्यः षडक्षर इति ।

एकार-वंकाररूप इत्यर्थः । (अ० क०, पृ० 189)

गुह्यषूक्

गुह्यं परमाक्षरचतुर्थबिन्दुः, तद्वरतीति यथा । (अ० क०, पृ० 192)

गुह्यराट्

गुह्यं श्रावक-प्रत्येकबुद्ध्यनयोरुत्तरं वज्रयानं कायवाक्चित्तज्ञानैकलोलीभावो वा, तत्र
महामुखरूपतया राजत इति गुह्यराट् । पञ्चगुह्यराजत्वाद् वा गुह्यराट् ।

(अ० क०, पृ० 183)

गुह्येन्द्रः

गुह्येन्द्रः कायवाक्चित्तैश्वर्यलाभी । (अ० क०, पृ० 192)

गौतमः

परमाक्षरसुखत्वादेव गौतमः शाक्यमुनिः सिद्धार्थः । (अ० क०, पृ०, 283)

चक्रवर्ती

महासुखशुक्ररूपतया षट्चक्रेषु वर्तितुं शीलमस्य स चक्रवर्ती । (अ० क०, पृ० 238)

चतुर्मुद्रा

कर्ममुद्रा-महामुद्रा-ज्ञानमुद्रा-समयमुद्रा.....उक्तं च चतुर्मुद्रोपदेशे तद्यथा—

कर्मज्ञानमहामुद्रासमयाख्यः प्रभास्वरः ।

हेतुर्भाव्या तथा प्राप्य चतुर्थोऽविनश्वरः ॥

हेतुरिति प्रथमं कर्ममुद्रोद्भूतं यत्सहजमच्युतसुखम् । उक्तं च भगवता—तत्सत्यमेव, किन्तु संवृत्या लौकिकदृष्टान्तेनादर्शमिव न परमार्थतः । तस्मात्तीक्ष्णेन्द्रियेण न ग्राह्या कर्ममुद्रा । कर्ममुद्रा च स्तनकेशवती कामधातुसुखस्य हेतुः । कर्म चुम्बनालिङ्गनगुह्यस्पर्शवज्रस्फालनादि-व्यापारात्मकम्, तेनोपलक्षिता मुद्रा प्रत्ययकारिणी । प्रत्ययोऽत्र क्षरसुखलक्षणः । मुद्रं सुखविशेषं राति ददातीति मुद्रा भाव्या । ज्ञानमुद्रा, सा च स्वचित्तपरिकल्पिता विश्वमात्र- (ता) देवीस्वभावा पूर्वानुभूता रूपधातुसुखस्य हेतुः । ज्ञानं पूर्वहसितरमितादिभावनालक्षणम्, ऽत्ययोऽत्र स्पन्दसुखलक्षणः । स्कन्धधात्वायतनादिदेवताकारेण विशोध्य मण्डलचक्रस्वभावं यथा विधिना स्फुटीकृत्य मन्थमन्थानयोगेन ज्ञानवर्हि प्रज्वालय यावद् दग्धेऽहं स्रवते शशी ललाटकण्ठहृन्नाभिवज्रकमलकर्णिकाग्रतः । बोधिचित्तरूपेण विषयेन्द्रियसमस्तमहासुखसागरस्य यदेकलोलीभूततन्मयसमाधिमापन्नो भूत्वा तिष्ठेत्, यावत् श्रीमहामुद्राऽभिमुखी भवतीति प्राप्या । महामुद्रा स्वप्नेन्द्रजालमनोमयसदृशी । महती चासौ (मुद्रा) महामुद्रा चेति कृत्वा । महत्त्वं पुनरस्याः सर्वाकारवरोपेतत्वं न प्रादेशिकत्वम्, मुद्रयतेऽनेनेति बोधिचित्तवज्रेण मुद्रा । प्रत्ययोऽत्र स्वचित्तपरिकल्पनाधर्मरहितो धूमादिनिमित्तपूर्वकः स्वचित्तप्रतिभासो योगिगम्यः प्रतिसेनावदिति । तामालिङ्ग्य यावत्समयमुद्रा साक्षात् क्रियते । अविनश्वरा परमाक्षर-स्वरूपिणी सा च फलरूपमहामुद्रा ।

मुद्रं परमाक्षरसुखलक्षणं राति सर्वकालमादत्ते पूर्णविस्थायामचलयोगेनेति मुद्रा । कायवाक्चित्तज्ञानविशुद्ध्या मुद्राचतुष्टयमुक्तम् । श्री आदिबुद्धे चोक्तम्—

क्षरः क्षरः (क्षरोऽक्षरः) ततः स्पन्दो निस्पन्दो विमलोऽपरः ।

¹अब्जे वज्रप्रवेशः शिखिनि च मरुतो बिन्दुपातस्तृतीयः,
एतद्योगत्रयस्य प्रकटितनियता कायवाक्चित्तमुद्रा ।
रागारागान्तकाद्या परमसुखनिधिर्योगगम्या चतुर्थी
मुद्राणां सैव माता भवति सुफलदा श्रीगुरोर्वक्त्रमेवा ।

उक्तं च वैरोचनाभिसम्बोधितन्त्रे—

कर्ममुद्रां समासाद्य धर्ममुद्रां विभावयेत् ।
तत्र (अत) ऊर्ध्वं महामुद्रा तस्याः समयसम्भवः ॥

अन्यत्र च—

तां मोक्षलक्ष्मीमविनष्टसौख्यीं (ख्यां) त्यक्त्वा शुभां भगवतीं युवतिं रमन्ते ।
प्रायेण पूर्वाञ्जितमुग्रकर्म येनामृतं त्यज्य विषं पिबन्तीति ॥

श्री आदिबुद्धे च—

²एता मुद्राश्चतस्रोऽक्षरसुखफलदा योगिना भावनीयाः,
सर्वस्मिन् सर्वकालं सुरतरतिगतैर्लोकमार्गप्रयुक्तैः ।
ग्रामाख्येऽथ श्मशानेऽशुचिशुचिनिलये वेश्मदेवालये च,
वर्णावर्णाभियुक्तैस्तनुबलमुखदैरन्नपानादियुक्तैः ॥

(अ० क०, पृ० 322-326)

चतुःस्मृतिसमाधिराट्

हसितेक्षणपाण्यावासिद्वन्द्वचतुःसमाधिराजनाच्चतुःस्मृतिसमाधिराट् । (अ० क०, पृ० 303)

चत्वारि पीठानि

चतुष्पीठे चोक्तम्—

“मन्त्रादात्मपीठम्, आत्मपीठात्परपीठम्, परपीठात्तत्त्वपीठम्” । (डा० जा० सं० २०, पृ० 4)

चत्वारिंशत् क्षणाः

रागो रक्तं तुष्टं मध्यमतुष्टमतितुष्टं हर्षणं प्रामोद्यं विस्मयो हसितमाह्लादनमालिङ्गनं चूषणं
(स्थैर्यं) वीर्यं मानः करणं हरणं बलमुत्साहः साहसं मध्यमसाहसमुत्तमसाहसं रौद्रं विलासो
वैरं शुभं वाक्स्फुटं सत्यम् असत्यं निश्चयो निरुपादनं दाहत्वं चोदनं शौर्यम् अलज्जा धूर्तत्वं
दुष्टत्वं शठकौटिल्यमिति चत्वारिंशत् क्षणा उपायज्ञानस्य । (अ० क०, पृ० 310)

1. का० त०, 3.126

2. का० त०, 5.54

चित्तवज्रम्

द्विविधं चित्तवज्रं तु पिण्डचित्तं प्रकाशं चेति ।

पिण्डचित्तं कर्ममुद्राध्यानम्, प्रकाशं महामुद्रेति ॥ (डा० जा० सं० र०, पृ० 2)

चित्तस्यैकाग्रता

चित्तस्यैकाग्रता नाम बिम्बेन सह चित्तस्यैकीकरणमिति । (डा० जा० सं० र० पृ० 6)

जगद्गुरुः

जगतां श्वासवातानां कायवाक्चित्तानां वा गुरुस्तत्त्वोपदेष्टा । (अ० क०, पृ० 188)

सर्वप्रपञ्चोपशमेनाविचलितसुखज्ञानविहारत्वाज्जगद्गुरुः । (अ० क०, पृ० 319)

जितारिः

अविद्यादिद्वादशाङ्गनिरोधनाजितारिः । (अ० क०, पृ० 237)

जितेन्द्रियः

उष्णीषमणिशिखराश्रितत्वेन सर्वेन्द्रियविषयानभिभवनीयत्वाद् द्वीन्द्रियसंयोगानुत्पन्नत्वाद् वा ।
(अ० क०, पृ० 241)

जिनजिक्

जिनान् अक्षोभ्यादीन् जनयतीति नैरुक्त्या जिनजिक् विमलनिराभासचित्तावबोधरूप इत्यर्थः ।
(अ० क०, पृ० 294)

जिनः

रागविरागमध्यरागविजयित्वाज्जिनः । (अ० क०, पृ० 237)

ज्ञानसंभवः

तुर्यातीतास्तिनास्तिव्यतिक्रान्तस्वसंवेद्यत्वाद् ज्ञानसंभवः । (अ० क०, पृ० 330)

तत्त्वः

भावाभावैकरूपतत्त्वयोगात्तत्त्वः । (अ० क०, पृ० 303)

तथता

तथता वामदक्षिणवाहभङ्गेनावधूतीवाहः । उक्तं च—

नाडिकादिस्वभावेन देवतातत्त्वयोगतः ।

तासामेतत्परं शुद्धं स्वरूपं निःस्वभावता ॥

यत्प्रज्ञोपाययोरैक्यं सर्वाकारैकसंवरम् ।

सावधूती विधूतात्मा मध्यमा प्रतिपन्मता ॥

आदिमध्यान्तसंकल्पसम्बन्धानवधानतः ।

शुद्धः स्फटिकसंकाशः प्रकाशः सोऽवधूतिकः ॥ (अ० क०, पृ० 26 ।)

तथतात्मा

महासुखशुक्लिततया तथतात्मा । (अ० क०, पृ० 235)

तथागतः

तथा सहजसुखाकारेणोष्णीषकर्णिकातो वज्रमणिवरटके आगतं विवृत्या मणिवरटकात् पुनरुष्णीषचक्रगतं तथागतम् । उक्तं च—

आगतश्च गतश्चैव व्याप्य विश्वं व्यवस्थितः ।

गत्यागतिनिरोधाश्च (च) तथागत इति स्मृतेः ॥ (अ० क०, पृ० 187)

तथा तथता कर्मादिमुद्रा, तत्र गतमानन्दादिमुखज्ञानं यस्य स तथागतः ।

(अ० क०, पृ० 288)

तथता धर्मादया अवधूती, तद्गतत्वेन सर्वगुणोदयाद्दशविधप्राणादिवायुनिरोधेन दशभूमि-
समन्तप्रभापर्यन्तफलभूमिप्राप्तस्तथागतः ।

यथैवागतो वज्रमणिवरटकम्, तथैव उष्णीषचक्रं गतस्तथागतः । (अ० क०, पृ० 237)

त्रयस्त्रिंशत् क्षणाः

प्रकृतयो विरागो मध्यविरागोऽतिविरागो यन्मनोगतागतम् । शोको मध्यशोकोऽतिशोकः ।
सौम्यविकल्पो भीतं मध्यमभीतमतिभीतम् । तृष्णा मध्यतृष्णा अतितृष्णा उपादानं निःशुभ्रं
क्षुत्तृष्णावेदना समवेदना अतिवेदना । विदविद् धारणापदं प्रत्यवेक्षणं लज्जा कारुण्यं स्नेहो
मध्यस्नेहोऽतिस्नेहश्चकितं सञ्चयो मात्सर्यमिति त्रयस्त्रिंशत् क्षणाः प्रज्ञाज्ञानस्य ।

त्रिकायधृक्

सहजान्तर्वर्तिकायवाक्चित्तत्वात् त्रिकायधृक् । (अ० क०, पृ० 247)

त्रिलोकम्

त्रयोलोकास्त्रिलोकम्, कायवाक्चित्तम् । (अ० क०, पृ० 182)

त्रिलोकं कायवाक्चित्तलक्षणम् । (अ० क०, पृ० 195)

त्रैलोक्यं कायत्रयम् । (अ० क०, पृ० 264)

त्रैविद्यः

तिस्रो विद्याः कामावचररूपावचरमहामुद्रासिद्धिसाधिका यस्य स एव त्रैविद्यः ।

(अ० क०, पृ० 320)

दर्पः

अतिमानो दर्पः । (अ० क०, पृ० 333)

दर्शनम्

दर्शनमिति चुम्बनमालिङ्गनम् । (डा० जा० सं० २०, पृ० 2)

दशकामावस्था:

दशकामावस्थाश्च दशधूमादिनिमित्तानि प्रत्याहाराङ्गरूपाणि । तथा चोक्तं श्रीकालचक्रे¹—

चिन्ताकाङ्क्षाज्वरोऽङ्गे वरमुखकमले शुक्तिरन्या प्रवृत्तिः,
कम्पोन्मादश्च धूर्मा प्रभवति मनसो विभ्रमस्तीव्रमूर्च्छा ।
धूमाद्या वज्रिणस्ता प्रकटदशविधाः प्राणिनोऽङ्गेष्ववस्था,
लोके ता मन्मथस्य प्रकटितनियताः को जिनः कश्च कामः ॥

(अ० क०, पृ० 217)

दशधातवः

वायुश्चित्तं बोधिचित्तं रक्तं मज्जा अस्थोनि स्नायुर्मांसमिन्द्रियाणि चर्म चेति ।

(अ० क०, पृ० 224)

दशबलबलिता

दशविधधूमादिनिमित्तबलयोगाद् दशबलबलिता । (अ० क०, पृ० 331)

दशभूमीश्वरः

दशानां भूमीनां प्रमुदितादीनां चतुर्विंशतिपीठोपपीठादिलक्षणानामीश्वरः प्रधानं सहजज्ञाना-
कारेण व्यापकत्वात् । अस्यायमर्थः—

दानात् प्रमुदितो योगी शीलवान् विमलो भवेत् ।
क्षान्त्या प्रभाकरी वीर्यार्दिचिष्मान् पुण्यवानसौ ॥
ध्यानादभिमुखाकृष्टः प्रज्ञया तु सुदुर्जयः ।
दूरङ्गमो महोपायो बलवानचलो भवेत् ॥
साधु[श्च] प्रणिधानेन धर्ममेघस्तु ज्ञानवान् ।

जिनस्तथागतः प्रत्यात्मवेद्य एकादशो भवेत् ॥ (अ० क०, पृ० 222-223)

दंष्ट्राकरालः

दंष्ट्रा चण्डाली तस्या गुरूपदेशाज्ज्वलितायाः शिखरभूतत्वाद् दंष्ट्राकरालः ।

(अ० क०, पृ० 254)

दानवाधिपः

अनुपमाद्वयश्रीधर्माभृतलाभेन राहुस्वभावत्वाद् दानवाधिपः । (अ० क०, पृ० 318)

देवातिदेवः

महारागात्मककायत्वेन ब्रह्मात्मकत्वाद् देवातिदेवः । (अ० क०, पृ० 318)

देवेन्द्रः

प्रभास्वरचित्तवज्रत्वेन विष्णुस्वभावत्वाद् देवेन्द्रः । (अ० क०, पृ० 318)

द्वादशभूमयः

ताश्च भूमयः समन्तप्रभा-अमितप्रभा-गगनप्रभा-वज्रप्रभा-रत्नप्रभा-पद्मप्रभा-कर्मप्रभा-अनुपमा-
निरुपमा-प्रज्ञाप्रभा-सर्वज्ञता-प्रत्यात्मवेद्याख्याः । (अ० क०, पृ० 204)

द्वादशाकारसत्यार्थः

निःस्प(ष्य)न्दविपाकपुरुष(षा)कारवैमल्यक्षणानां प्रत्येकं त्रैगुण्याद् द्वादशाकाराद् द्वादशभूमयः
संवृतिपरमार्थसत्याभेदेन तद्योगाद् द्वादशाकारसत्यार्थः । तत्र कायवाक्चित्तविवेकनिःस्प-
(ष्य)न्दभेदेन प्रथमं त्रिकं निर्माणकायस्य । भास-प्रतिभास-प्रकृतिनिराभासविपाकभेदेन
द्वितीयं त्रिकं संभोगकायस्य । चित्तचैतसिकाविद्यापुरुष(षा)कार(वैमल्यविपाक)भेदेन
तृतीयं त्रिकं धर्मकायस्य । आनन्दद्वयविरमसहजानन्दवैमल्यभेदेन चतुर्थत्रिकं ज्ञानकायस्येति ।
प्राणक्षयेण रजोनिरोधाद्वा निरोधितमेषवृषादिद्वादशराशित्वेन वा द्वादशभूमिलाभाद् द्वादशा-
कारसत्यार्थः । (अ० क०, पृ० 308)

द्विपदोत्तमः

संवृतिपरमार्थज्ञानद्वयेन द्विपदेनोत्तमः श्रेष्ठो द्विपदोत्तमः । अथवा द्विपदेन वज्रमणिशिखरो-
ष्णीषाप्रतिष्ठाद्वयेन उत्तमो द्वादशभूमीश्वरः । यथोक्तं विमलप्रभायाम्—

एकं पदं वज्रमणौ रजोर्ज्जे उष्णीषशुके शशिनि द्वितीयम् ।

न्यस्तं सदोच्छेद्यमभेद्यमिष्टं भर्तुस्त्रिलोकमहितं शिरसा प्रणम्य ॥

(अ० क०, पृ० 194)

धर्मगण्डी

सकलसुखमयवाग्वज्रसमाधिविस्फारितसर्वधर्मप्रकाशकधर्मज्योति(ती)रूपत्वाद् धर्मगण्डी ।

(अ० क०, पृ० 262)

धर्मधातुः

कायत्रयात्मकमहासुखैकरूपत्वाद् धर्मधातुः । (अ० क०, पृ० 244)

धर्मयोनिः

सर्वसत्त्वानामुत्पत्तिस्थानत्वाद् ज्ञानकायत्वाद् धर्मयोनिः । (अ० क०, पृ० 248)

धर्मराट्

धर्मो धर्मधातुः स्वाधिष्ठानम्, तत्र तेन वा राजत इति धर्मराट्, सहजज्ञानालोकरूपत्वात् ।

(अ० क०, पृ० 244)

धर्मराजः

धर्मेण महासुखवर्षेण लोकान् रञ्जयतीति धर्मराजः । (अ० क०, पृ० 244)

धर्मेश्वरः

धर्मेण सहजानन्दचतुष्टयेन ईश्वरस्त्रिलोकस्वामी, नित्यं बोधिचित्तरसास्वादनैश्वर्यात् ।

(अ० क०, पृ० 244)

धातुः

सर्वधर्मप्रकृतिकत्वाद्धातुः । (अ० क०, पृ० 244)

धारणा

धारणा नाम प्राणस्य माहेन्द्रवारुणाग्निवायुमण्डला(ले) नाभौ कृतिश्चैव (हृदि कण्ठे) ललाटे प्रवेशः । न बाह्यनिर्गमः । बिन्दौ प्राणप्रवेशनमिति धारणाङ्गमुच्यते । (डा० जा० सं० २०, पृ० 6)

ध्यानम्

चतुरानन्दैकत्वाद् ध्यानम् । (अ० क०, पृ० 246)

प्रज्ञादिपञ्चविधध्यानरूपत्वाद् ध्यानम् । (अ० क०, पृ० 332)

ध्यानं नाम शून्येषु सर्वभावेषु चित्तप्रवृत्तिः (डा० जा० सं० २०, पृ० 5)

नाथः

नाथमच्युतबोधिचित्तम् । (अ० क०, पृ० 187)

नाथः समाध्यनुगमात् । सकलसत्त्वानामनाभोगेनाधिष्ठानात् । (अ० क०, पृ० 224)

अद्वययोगेन सुस्थितत्वान्नाथः । (अ० क०, पृ० 266)

नामसंगीतिः

नानातन्त्रोपलक्षितमहासुखाकारसहजानन्दसुखस्य नाम्ना सम्यग्ज्ञानं(गानं) नामसंगीतिः ।

(अ० क०, पृ० 190)

निराकारः

कल्पनापोढाभ्रान्तप्रत्यक्षदर्शनान्निराकारः परमाणुधर्मतातीतः कल्पनारहितत्वात् पिहिता-
पिहितनेत्रगम्यः । (अ० क०, पृ० 316)

निराभोगः

अनाभोगेन पञ्चकामोपभोगसुखत्वान्निर्गत आभोगो विकल्पप्रवृत्तिरस्य स तथा ।

उक्तं च—

“पूर्णप्रणिधानाहितसततानाभोगवाहि परकार्यम्” इति । (अ० क०, पृ० 287)

निर्माणकायः

अनाभोगबहिर्जगदर्थनानाप्रकृतिको निर्माणकायः । (अ० क०, पृ० 318)

निर्वाणम्

भावाभावपरामर्शशून्यत्वान्निर्वाणम् । (अ० क०, पृ० 285)

निर्विकल्पः

परमार्थज्ञानविकल्पस्याप्यभावान्निर्विकल्पः । उक्तं च—

¹परमार्थविकल्पेऽपि नावलीयेत पण्डितः ।

को हि भेदो विकल्पस्य शुभे वाप्यशुभेऽपि वा ॥ (अ० क०, पृ० 287)

नैरात्म्यम्

नैरात्म्यं सर्वधर्माणां निराभासलक्षणं विश्वबिम्बरूपम् । (अ० क०, पृ० 237)

पञ्चकायात्मकः

जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्त(सि)-तुरीय-तुरीयातीतत्वेन पञ्चकायात्मकः । (अ० क०, पृ० 247)

पञ्चचक्षुः

प्रत्याहारध्यानप्राणायामधारणानुस्मृत्यङ्गस्फुटीभावात् पञ्चचक्षुः । (अ० क०, पृ० 248)

पञ्चज्ञानात्मकः

पञ्चकुलात्मकत्वेन आदर्शादिज्ञानात्मकत्वात् पञ्चज्ञानात्मकः । उक्तं च—

¹बोलकवकोलयोगेन स्पर्शात् काठिन्यवासना ।

कठिनस्य मोहधर्मत्वाद् मोहो वैरोचनो मतः ॥

बोधिचित्तं द्रवं यस्माद् द्रवमब्धातुकं मतम् ।

अपामक्षोभ्यरूपत्वाद् द्वेषोऽक्षोभ्यनायकः ॥

द्वयोर्धर्षणसंयोगात् तेजः संजायते सदा ।

रागोऽमितवज्रः स्याद् रागस्तेजःसमुद्भवः ॥

कक्कोलहेतु यच्चित्तं तत् समीरणरूपकम् ।

ईर्ष्या अमोघसिद्धिः स्यादमोघो वायुसम्भवः ॥

सुखं रागं भवेद् रक्तं रक्तिराकाशलक्षणा ।

आकाशं पिशुनवज्रः स्यात् पिशुनमाकाशसम्भवः ॥ इति ।

अथवा मातापितृसंयोगे विपतुर्बोधिचित्तबीजेन चन्द्राक्षोभ्यद्रवत्वाददर्शरूपता । मातुः स्वयम्भू-
कुसुमेन सूर्यरत्नसम्भवरारागत्वात् समता । पद्मे वज्रप्रवेशेन महारागबीजेनामिताभमुखत्वात्

1. आ० मा०, पृ० 6

2. हे० त०, 2. 2. 53-57.

प्रत्यवेक्षणा । चलनस्पन्दनानुभवामोघसिद्धिरूपत्वात् कृत्यानुष्ठानम् । अन्तराभवविज्ञानप्रवेशेन वर्धनम्, ततो वैरोचनो जननीगर्भान्निष्क्रमणं बिम्बनिष्पत्तिः सुविशुद्धधर्मधातुः ।

(अ० क०, पृ०, 248)

पञ्चशिखा

आलोकालोकाभासालोकोपलब्धिप्रभास्वरधर्मधातुलक्षणः(णा) पञ्चशिखा ।

(अ० क०, पृ० 247-282)

पञ्चाकारभावना

मूलतन्त्रपञ्चाकारज्ञानस्तवे पञ्चश्लोकैः पञ्चाकारभावना भगवतोक्ता । तद्यथा —

शून्यो भावसमूहोऽयं कल्पनारूपवर्जितः ।

दृश्यते प्रतिसेनेव कुमार्या दर्पणे यथा ॥

लोकोत्तरसत्यरूपस्कन्धः, आदर्शज्ञानम् ।

सर्वभावसमो भूत्वा एको भावोऽक्षरः स्थितः ।

अक्षरज्ञानसंभूतो नोच्छेदो न च शाश्वतः ॥

वेदनास्कन्धः, समताज्ञानम् ।

सर्वसंज्ञात्मका वर्णा अकारकुलसम्भवाः ।

महाक्षरपदप्राप्ता न संज्ञा न च संज्ञिनः ॥

संज्ञास्कन्धः, प्रत्यवेक्षणाज्ञानम् ।

अनुत्पन्नेषु धर्मेषु संस्काररहितेषु च ।

न बोधिर्नैव बुद्धत्वं न सत्त्वो नैव जीवितम् ॥

संस्कारस्कन्धः, कृत्यानुष्ठानज्ञानम् ।

विज्ञानधर्मतातोता ज्ञानशुद्धा ह्यनाविलाः ।

प्रकृतिप्रभास्वरा धर्माः धर्मधातुगतिं गताः ॥

विज्ञानस्कन्धः, सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानम् । (अ० क०, पृ० 328-329)

पञ्चाक्षरशून्यम्

ज्ञानस्कन्धविज्ञानस्कन्धज्ञानधात्वाकाशमनःश्रोत्रशब्दधर्मधातुदिव्येन्द्रियभगमूत्रस्त्रावशुक्रच्युतिरूपाणां निरावरणता प्रत्येकं स्वस्वविषयग्रहणविवर्जितत्वं समरसमेकलोलीभूतत्वं परमाक्षरशून्यं योगिस्वसंवेद्यम्, न सर्वाभावलक्षणम् । तदेवाह—तमाकारशून्यं रेखामात्रमनुच्चार्य कर्तृकाकारं मध्ये, संस्कारस्कन्धवायुधातुघ्राणस्पर्शवागिन्द्रियविद्स्त्रावाणामेकलोलीभूतत्वं मध्यानाहतचिह्नात् पूर्वेण इकारशून्यं दण्डाकारं द्वितीयाक्षरशून्यम् । वेदनास्कन्धतेजोधातु-

चक्षूरसपाणिगतीनां निरावरणगतं मध्यानाहतचिह्नादक्षिणेन लृकारशून्यं बिन्दुद्वयं तृतीयाक्षरशून्यम् । संज्ञास्कन्धतोयधातुजिह्वारूपादेन्द्रियादीनां निरावरणता मध्यानाहतचिह्नाद्वामेन बिन्दुरूपमेकमनुच्चार्यमूकारशून्यं चतुर्थाक्षरमहाशून्यम् । रूपस्कन्धपृथिवीधातुकायेन्द्रियगन्धपाटवालापानां समरसत्वमेकलोलीभूतत्वं मध्यानाहतचिह्नात् पश्चिमेन तद् हलाकृतिरेकारशून्यं पञ्चाक्षरशून्यम् । (अ० क०, पृ० 314-315)

पद्मनर्तेश्वरः

अवाच्यसुखबोधिचित्तत्वात् पद्मनर्तेश्वरः । (अ० क०, पृ० 291)

परमानन्दः

परमानन्दः सांक्लेशिकसुखभोगलक्षणत्वाद् भवः संसारः ।

रागः परमानन्दः, आसत्तिलक्षणत्वात् । (अ० क०, पृ० 274)

भावेषु भावनारोपशून्यत्वेन विमर्दनात् ।

निःस्वभावत्वयोगात्मा परमानन्दरूपकम् ॥ (अ० क०, पृ० 211)

परवित्

स्वपरयोरद्वैतबोधात् परवित् । (अ० क०, पृ० 321)

पारमिताश्चतस्रः

उपाय-बल-प्रणिधि-ज्ञान-पारमिताश्चतस्रः । उक्तं च—“तस्याः सत्त्वार्थमृद्धिर्भवनिधनमजप्राप्तिरन्याश्चतस्रः” इति । अथ सत्त्वार्थमित्युपायः । ऋद्धिरिति प्रणिधिः । भवनिधनमिति बलम् । अजप्राप्तिरिति ज्ञानम् । (अ० क०, पृ० 216)

पारमिताः (दश)

उदकादिपूर्वकलोकोत्तराद्यभिषेकदानाद्दानम् । कमलकुलशसंयोगे बोधिचित्तरक्षणात् शीलम् । न क्वचित् स्थिताः सर्वधर्मा इति सर्वधर्मनिर्विकल्पावगमक्षमणात् क्षान्तिः । महास्फुटीभावोद्योगाद् वीर्यम् । चतुर्थध्याननिमज्जनाद्ध्यानम् । प्रज्ञा दिव्यमुद्रा गुरुमुखैकलभ्या । उपायो हठयोगोऽपि समाध्यङ्गस्फुटीभावार्थम् ।समाध्यङ्गस्फुटीभावेन एकक्षणाभिसम्बोधि-क्षणोदये सर्वं स्वपरार्थनिष्पत्तिः प्रणिधिः । बलं महासुखसामर्थ्यम् । ज्ञानं मणिवरटकान्तः-प्रवृत्तिविवृत्या उष्णोषचक्रपर्यन्तं महासुखज्ञानम् । (अ० क०, पृ० 221-222)

पीठानि

परपीठेति प्रज्ञोक्ता आत्मपीठमुपायकम् ।

अनयोरद्वयीभावो योगपीठ इति स्मृतम् ॥

तत्त्वपीठं तदुत्पन्नं तद्रहितं च यद् भवेत् ।

सहजेति समाख्यातं वाक्पथातीतगोचरम् ॥

अन्यत्र च—

१ पीठं स्त्रीगुह्यपद्मं प्रभवति समये वज्रमेवोपपीठं
क्षेत्रं छन्दोहमेलापकचित्तिभुवनं तद्वदेवं समस्तम् ।
पीठं वामाङ्गपूर्वं ह्युपरमपि तथा दक्षिणं चोपपीठम्
एवं क्षेत्रादि सर्वं करचरणगताश्चाङ्गुलीर्जानुसीम्नः ॥ इति ।

(अ० क०, पृ० 308)

पुण्यम्

पुण्यं महाकरुणारागरञ्जिताचित्तचित्तेन समाध्यङ्गाभिमुखीकरणं सुखं (पुण्यम्) । उक्तं च—
न विरागात् परं पापं न पुण्यं सुखतः परम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन च्युतिसौख्यं विवर्जयेत् ॥

(अ० क०, पृ० 245)

प्रजापतिः

ज्ञानप्रबोधेन तुर्यातीतप्रभास्वरमयज्ञानबिम्बमयत्वेन सर्वजन्तूनामुत्पादनात् प्रजानां जन्तूनां
पतिः प्रजापतिः । (अ० क०, पृ० 265)

प्रज्ञा

वैमल्यगतमहामुद्रा प्रज्ञा । (अ० क०, पृ० 319)

प्रज्ञोपायः

प्रज्ञा सर्वधर्माविकल्परूपा शून्यता । उक्तं चादिबुद्धे—

१ त्यक्त्वेमां कर्ममुद्रां सकलुषहृदयां कल्पितां ज्ञानमुद्रां
सम्यक्सम्बोधिहेतोर्जिनवरजननीं भावयेद् दिव्यमुद्राम् ।
निर्लेपां निर्विकारां खसमहृततमां व्यापिनीं योगगम्यां
कूटस्थां ज्ञानतेजां भवकलुषहरामादिबुद्धानुविद्धाम् ॥

इति सैव उपायः । (अ० क०, पृ० 186)

प्रत्यात्मवेद्यः

षष्ठो वज्रधरः कुमारीसुरतसुखवदनन्यवेद्यत्वात् प्रत्यात्मवेद्यः । उक्तं च—

वक्तुं न शक्यते सौख्यं कुमार्याः सुरतं विना ।
यौवने सुरतं प्राप्य स्वतो वेत्ति महासुखम् ॥
एवं न शक्यते वक्तुं समाधिरहितं सुखम् ।

समाधावक्षरं प्राप्ताः स्वतो विन्दन्ति योगिनः ॥ (अ० क०, पृ० 246)

1. का० त०, 3.166.

2. का० त० 4.199.

प्रत्याहारः

प्रत्याहारशब्देन त्रैधातुकबुद्धबिम्बदर्शनम् । कुण्डल्या सह योगतः । अत्रामृतकुण्डलीसंज्ञया सन्ध्याभाषान्ते वा स्वरित्युक्तो भगवता । (डा० जा० सं० २०, पृ० 5)

प्रमथः

महामुखशुक्रदान्तवशीकृतप्रादेशिकक्षणा(स्कन्धा)दिविघ्नगणत्वेन विघ्नाधिपत्वात् प्रमथः ।

(अ० क०, पृ० 319)

प्रमथेश्वरः

कायवाक्चित्तमुक्तिरूपत्र्यम्बकस्वभावत्वात् प्रमथेश्वरः । (अ० क०, पृ० 319)

प्रह्वकायः

प्रह्वकायः सहजनिमग्नकायवाक्चित्तः । (अ० क०, पृ० 192)

प्राणायामः

प्राणायामो नाम ललनावामदक्षिणमार्गनिरोधः । अयमेव वसन्तकालः । अवधूतीमध्यमाङ्गे प्राणवायोः समप्रवृत्तिरिति । तत्रानिलयोगेनावधूत्यां संचार इति । तस्य ॐकारेण उच्चा-
(च्छ्वा)सः, आःकारेण निःश्वासः । ॐ हूँकारेण निरोधश्चन्द्ररविराहुस्वभावेन कुरुते योगी ।
इति प्राणायामाङ्गमुच्यते । (डा० जा० सं० २०, पृ० 6)

प्रीतिः

प्रीतिर्नाम सर्वभावेषु चित्तारोपणम् । (डा० जा० सं० २०, पृ० 6)

[इसके आगे का अंश 'धीः' के अगले अंक में देखें]

चार बौद्ध कुलों की समयमुद्राएँ

—जनादन पाण्डेय—

['घीः' के अङ्क 1, 3, 4, 7, 9, में विविध मुद्राओं के लक्षण भिन्न-भिन्न ग्रन्थों से दिये गये हैं । प्रथम अङ्क में बताया गया है कि प्रत्येक देवता की भिन्न-भिन्न आराधनाओं में समयमुद्राएँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं । इस अङ्क में बौद्धों के चार प्रसिद्ध कुलों—तथागतकुल, वज्रसत्त्वकुल, पद्मकुल और मणिकुल की समयमुद्राओं के लक्षण सर्वतथागततत्त्वसंग्रह से दिये जा रहे हैं ।]

तथागतकुल की समयमुद्राएँ

रत्नवज्रा

रत्नवज्रा समाङ्गुष्ठतर्जनीमुखसन्धनात् ।
सा एव मध्यमानामकनिष्ठा सुप्रसारिता ॥

पताका

पताका तु समानामकनिष्ठाभ्यां समन्विता ।
हासस्थानस्थिता चैव सा एव परिवर्तिता ॥

वज्रकोशा

प्रसारितसमाङ्गुष्ठस्थिता कुञ्चितर्जनी ।
सा एव वज्रकोशा तु मध्यमा मुखसन्धिता ॥

चक्रा

सा एव तु समानामकनिष्ठा चक्रसंज्ञिता ।
निर्युक्ताङ्गुष्ठबन्धा तु प्रसारितमुखोत्थिता ॥

वज्रमुष्टि

वज्रबन्धस्त्वधोदानात् स्वाञ्जलिश्चोर्ध्वदायिका ।
समाङ्गुष्ठनिपीडा च सुप्रसारितलेपना ॥
एकतर्जनिसंकोचा द्व्यङ्गुष्ठग्रन्थिबन्धिता ।
अङ्गुष्ठाग्रघकटा बन्धा वज्रमुष्ट्यग्रसन्धिता ॥

—सर्वतथागततत्त्वसंग्रह, पृ० 28

वज्रसत्त्वकुल की समयमुद्राएँ

सत्त्वोष्णीषा

वज्रबन्धं दृढीकृत्य प्रविष्टाङ्गुष्ठसंचयम् ।
कुञ्चिताग्रयासु गच्छन्तं सत्त्वोष्णीषेति संज्ञिता ॥

तेजोराशि

वज्रबन्धं समादाय समाङ्गुष्ठात्ममध्यमा ।
तेजोराशीति विख्याता तेजोराशेर्माहात्मना ।'

महाविद्योत्तमा

वज्रमुद्राद्विकं बद्ध्वा कनिष्ठाङ्गुष्ठसन्धितम् ।
गाढमङ्कुशबन्धेन महाविद्योत्तमस्य तु ॥

हृदया

महाविद्योत्तममयीं मुद्रां बद्ध्वा सुयन्त्रिताम् ।
हृदयाङ्गुष्ठमुखानां तु बन्धनाद् हृदया स्मृता ।

चतुःपुष्पा

तामेवानाममध्याभिरङ्गुलीभिः सुयन्त्रिताम् ।
वज्ररत्नप्रयोगेण परिवर्त्य मुखस्थिताम् ॥
तामेवोत्तानसंस्थां स्वहृदये परिवर्त्य वै ।
चतुःपुष्पा तु नामेन पद्मविद्योत्तमस्य तु ॥

वज्रकर्मप्रसाधिका

तामेव मूर्धादारभ्य भ्रमत्कायाग्रमण्डला ।
वज्रविश्वस्य मुद्रेयं वज्रकर्मप्रसाधिका ॥

सर्वसाधिका

सत्त्ववज्रां दृढीकृत्य कनिष्ठा वज्रसन्धिता ।
सर्वविद्धृदयस्यास्य मुद्रेयं सर्वसाधिका ॥

वज्रशूला

कनिष्ठाङ्गुष्ठबन्धे तु वाममध्याङ्गुलित्रिके ।
त्रिशूले मध्यशूलं तु वज्रमुद्रापरिग्रहम् ॥
वज्रविद्योत्तमस्येयं वज्रशूलेति कीर्तिता ।

पद्मकुल की समयमुद्राएँ

विश्वपद्मा

वज्राञ्जलिं समाधाय सममध्योत्थिता तथा ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठविकचा विश्वपद्मेति कीर्तिता ॥

जटाबुद्धा

सा एवाङ्गुष्ठपर्यङ्का कुञ्चिताग्राग्रविग्रहा ।
मध्यवज्रजटामूर्ध्नि जटाबुद्धेति कीर्तिता ॥

अमोघमुद्रा

वज्रबन्धं दृढीकृत्य समाङ्गुष्ठमधस्तनम् ।
तर्जनीद्वयसंकोचा समुद्गता समाधितः ॥
समाञ्जलिं समाधाय तर्जनी वज्रपीडिता ।
विकसिताङ्गुष्ठमुखयोर्मुद्राऽमोघेश्वरस्य तु ॥

पद्मबुद्धा

वज्रबन्धं दृढीकृत्य समुत्तानं तु बन्धयेत् ।
समाङ्गुष्ठकृता पद्मे पद्मबुद्धेति कीर्तिता ॥

साधुपद्मा

अङ्गुष्ठवज्राग्राभ्यामङ्कुशं खड्गमेव च ।
अन्त्यद्वयविकासा च मध्यानामाग्रकुङ्मला ॥
समाञ्जलिं समाधाय वलिताङ्गुष्ठकुञ्चिता ।
तर्जन्या तर्जनीं गृह्याकर्षयेत् पद्मबाणया ॥
समाञ्जलिं तथोत्तानां बन्धयेत् साधुमुद्रया ।
साधुकारं प्रददाति साधुपद्मेति कीर्तिता ॥

पद्मभृकुटि

समाञ्जलिं दृढीकृत्य कुञ्चिताग्रया मुखस्थिता ।
कनिष्ठाभ्यां तु विकचा पद्मभृकुटिरुच्यते ॥

पद्मसूर्या

वज्रबन्धं दृढीकृत्य हृदये तु प्रसारयेत् ।
पद्मसूर्येति विख्याता सर्वाङ्गुलिमुमण्डला ॥

पद्मरत्नध्वजाग्री

समाञ्जलिं दृढीकृत्य तर्जनीभ्यां मणीकृता ।
पद्मरत्नध्वजाग्री तु मूर्ध्नि बाहुप्रसारिता ॥

पद्ममुष्टि

वज्रमुष्टिं द्विधाकृत्य कुञ्चयित्वा तु मध्यमे ।
स्वाङ्गुष्ठपृष्ठनिहिते पद्ममुष्टिरुदाहृता ॥

हयग्रीवा

वज्रधातुप्रयोगेण वज्राञ्जलिसमुत्थिता ।
सर्वपूजाग्रयदेवीनां समयाग्रयस्तु बन्धयेत् ॥
वज्रबन्धं दृढीकृत्य सन्धयेत् तर्जनीद्वयम् ।
संकोचात् पुरतः सन्धेद् हयग्रीवेति कीर्तिता ॥

अमोघपाशा

पद्माञ्जलिं समाधाय तर्जनीग्रन्थिबन्धना ।
अमोघपाशमुद्रेयं तर्जन्यङ्गुष्ठसङ्कुला ॥

—सर्वतथागततत्त्वसंग्रह, पृ० 116, 117

(पद्मकुल की गुह्यमहामुद्राओं के लिये उक्त ग्रन्थ के पृष्ठ 122-124 भी देखें)

मणिकुल की समयमुद्राएँ**सर्वार्थसिद्धिदा**

वज्रबन्धं दृढीकृत्य तर्जनीभ्यां मणीकृता ।
प्रसारिताङ्गुष्ठमुखा हृदि सर्वार्थसिद्धिदा ॥

मणिरत्नप्रदा

वज्रबन्धं समाधाय मध्यमा मणियोजिता ।
मुद्रेयं मणिचित्तस्य मणिरत्नप्रदायिका ॥

मणिरत्नाङ्कुशी

सा एवाङ्कुशयोगेन तर्जनीभ्यां समिन्धिता ।
सर्वार्थकर्षणी मुद्रा मणिरत्नाङ्कुशी स्मृता ॥

बाणाकर्षणी

सा एव वलितां कृत्वा तर्जन्या तर्जनीग्रहा ।
बाणाकर्षणयोगेन कर्षयन् रागयेज्जगत् ॥

साधुकारा

सा एव साधुकारा तु तर्जन्यङ्गुष्ठयोजिता ।
सा एवाङ्गुष्ठसन्धानसंच्छन्नाग्रयाङ्गुली तथा ॥

मणिदृष्टिः

अङ्गुष्ठान्तरयोश्चैव पुनरग्रया मुखे क्षणात् ।
मणिदृष्टिस्तु सा ख्याता दृष्ट्यर्थानां प्रहारिका ॥

मणिकोशा

मणिकोशा हरेदथान् जगतां विक्रमेण तु ।
वज्रबन्धाग्रचक्रा च समाङ्गुष्ठप्रवेशिता ॥

मणिबन्धा

मणिबन्धेति विख्याता रक्षाकवचिनी स्मृता ।
सा एव सर्वसिद्ध्यर्था यक्षयोगा मुखस्थिता ॥

मणिदंष्ट्रा

मणिदंष्ट्रेति विख्याता भयात् सर्वार्थहारिणी ।
वज्रबन्धं दृढीकृत्य कुञ्चिताग्रया सुयन्त्रिता ॥

मणिमुष्टिः

संगृह्याङ्गुष्ठयोः सम्यग् मणिमुष्टिस्तु सिद्धिता ।
पूजाग्रसमयानां तु वज्रधातुप्रयोगतः ॥

—सर्वतथागततत्त्वसंग्रह, पृ० 145-147

इन मुद्राओं में कामनाभेद से कुछ हेरफेर भी होते हैं, उन्हें उक्त ग्रन्थ में ही देखें ।

— — —

सर्वतथागततत्त्वसंग्रह : श्लोकार्धानुक्रमणी

—ठिनलराम शाशनी—

['धीः' के पिछले अंकों में अनुसन्धाताओं की सुविधा के लिये सेकोद्देशटीका, अद्वयवज्रसंग्रह, साधन-माला, कालचक्र आदि ग्रन्थों के परिशिष्टों का प्रकाशन किया गया था। अब इस अंक में सर्वतथागततत्त्व-संग्रह की श्लोकार्धानुक्रमणी दी जा रही है।]

सर्वतथागततत्त्वसंग्रह का सम्पादन विस्तृत भूमिका सहित डा० लोकेशचन्द्र ने किया है तथा मोतीलाल बनारसीदास द्वारा सन् 1987 में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ का अनुवाद चीनी तथा तिब्बती भाषाओं में हुआ है। बौद्ध तन्त्रों के चार विभागों में यह योगतन्त्र के अन्तर्गत है। यह योगतन्त्र का मूल ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के चार भाग हैं। प्रत्येक भाग को आश्रय करके आचार्यों ने टीका ग्रन्थों की रचना की है। इससे ऐसा जान पड़ता है कि प्रत्येक भाग अपने में पूर्ण है। आचार्य पद्मवज्र द्वारा रचित "तन्त्रार्थवितारव्याख्यान" (तो० 2502) नामक टीका ग्रन्थ में उन्होंने तत्त्वसंग्रह में वर्णित 37 तत्त्वों के नाम गिनाये हैं। इससे तत्त्वसंग्रह नाम की सार्थकता प्रतीत होती है।]

श्लोकार्धानुक्रमणी

अकारस्तु मुखं वाच्यं	47	अग्रद्याङ्गुलिद्वयं बध्वा	71
अकारस्तेन धर्माणा	191	अग्रद्याङ्गुलिमुखाभ्यां तु	71
अक्रोधस्यापि सत्त्वार्थान्	167	अग्रद्याङ्गुलिं हृदि स्थाप्य	87
अक्रोधोऽपि हि संदुष्टा	167	अग्रद्याधिकमहादंष्ट्रा	69
अक्षमालाग्रगणी	123	अग्रद्या वज्रा द्विवज्राग्री	38
अक्षरप्रवेशेन	204	अङ्गुशं बाहुसंकोचं	36
अक्षराक्षर सर्वाक्ष	109	अङ्गुशाद्यास्तु कर्तव्या	65
अक्षोभ्यमण्डलं कुर्यात्	20	अङ्गुलीं चालयेत् क्रुद्धो	67
अक्षोभ्यस्य भूमिस्पर्शा	30	अङ्गुल्यग्रमखोद्धान्ता	28
अक्षोभ्याद्यास्तु चतुरः	20	अङ्गुष्ठद्वयपर्यङ्का	38
अक्षोभ्यायां तु बन्धाया	30	अङ्गुष्ठद्वयमूलं तु	71
अग्निं प्रज्वालय कुञ्जैस्तु	83	अङ्गुष्ठमुखयोर्वज्रं	123
अग्राभ्यां कवचं बन्धे	39	अङ्गुष्ठवज्रसंक्लन्ता	38
अग्राङ्गुशाग्रसंयोगाद्	28	अङ्गुष्ठवज्राग्राभ्यां	116
अग्राङ्गुलिसमास्फोटा	25	अङ्गुष्ठाग्रचकटा बन्धा	28
अग्राङ्गुली हृदि स्थाप्य	75	अङ्गुष्ठान्तरयोश्चैव	146

अङ्गुष्ठा बन्धपर्यङ्का	123, 152	अनतिक्रम[णो यो] हि	206
अङ्गुष्ठाभ्यां तु संपीडय	117	अनया तु धनं दद्या	146
अचित्तं चित्तं चित्ताग्रय	210	अनया धर्मपूजया	47
अञ्जलिं तु दृढं बध्वा	27	अनया धर्ममुद्रया	47
अतः परं प्रवक्ष्यामि	29, 30, 38, 73, 93- 95, 97, 116, 123, 128, 142, 153	अनया बद्धमात्रया	68, 145
अतः परं समासेन	44	अनया बन्धया सम्यक्	98
अत्यागादात्मनोजनार्थात्	179	अनया सर्वसत्त्वानां	114
अत्रास्तीति स्वयं वाचा	23	अनया साधयन् धर्मान्	168
अथातः संप्रवक्ष्यामि	20, 27, 35, 42, 46, 49, 51, 63, 72, 79, 82, 86, 88, 91, 97, 100, 103, 111, 118, 125, 129, 133, 135, 140, 148, 154, 158, 161, 162.	अनादिनिधनः शान्तो	3
अथात्र सर्वकल्पानां	26	अनादिनिधनः सत्त्वः	188
अथासां कर्म प्रवक्ष्यामि	26	अनुच्छ्वासं सूक्ष्मश्वासं	208
अथासां कर्ममुद्राणां	30	अनुपूर्वेण पङ्क्त्या वै	103
अथासां कर्म वक्ष्यामि	28, 68	अनुमोदनपूजात्मा	47
अथासां धर्ममुद्रासाधनं	30	अनुमोदनादियोगेन	205
अथासां साधनं वक्ष्ये	28, 30, 38	अनेन ज्ञानयोगेन	50, 169
अदुष्टदमनात् क्रोधा	179	अनेन पूजाविधिना	74-75
अद्याभिषिक्तस्त्वमसि	23	अनेन भावयोगेन	197
अधर्मा यदि वा धर्माः	79	अनेन मुद्राप्रयोगेन	191
अधर्मोऽप्यथ वा धर्मः	42	अनेन विधिना मुद्रा	32
अधोगतसमाङ्गुष्ठ	146	अनेन विधिना सिद्धो	127
अधोष्ठं दशनैर्गृह्य	75	अनेन विधियोगेन	50, 181
अध्येषयामस्त्वां नाथ	19, 56	अनेन स्तोत्रराजेन	56
अध्येषयामस्त्वां रत्न	140	अनेनाभिष्टुतोऽस्माभि	19
अध्येषयामस्त्वां वीर	100	अन्तर्गतेन मनसा	194
अध्येषयामि त्वां नाथ	211	अन्त्यद्वयविकासा च	116
अनक्षर महाजाप	214	अन्त्याङ्गुलिमुखासङ्गाद	27
अनक्षरं तु सद्धर्म	191	अन्त्याङ्गुलिसमास्फोटा	70
अनक्षरेषु धर्मेषु	166	अन्यरत्नमयं वापि	151
अनतिक्रमणीया हि	189	‘अन्यस्व’ इति वै प्रोक्ते	29
अनतिक्रमणीयैस्तु	189	अन्या सर्वगामी	26
		अन्या सिद्धिमात्रस्तु	25
		अपश्यं सर्वसत्त्वार्थं	179
		अपुण्योऽपि हि सिध्येय	204
		अवन्ध्यो दिवसः कार्यो	180
		अभयाग्र्या भवेत् क्षिप्रं	30
		अभिषेकप्रदानं च	178

अभिषेक महारत्न	139	अविद्याभिनिविष्टोऽयं	203
अभिषेकस्तथा दानं	168	अविद्याविप्रणाशाय	206
अभिषेके द्विवज्रं तु	30	अविद्यासुप्रहीणत्वात्	205
अभ्यसन् सुदृढीभूतः	126	अविनेयस्य लोकस्य	212
अभ्यसंस्तु महामैत्रीन्	166	अवैवर्तिकचक्रं तु	11
अभ्यग्र्य व्यापि सर्वात्म	140	अष्टस्तम्भप्रयोगेण	111
अमितायोः समाध्यग्रा	30	अष्टस्तम्भप्रयोगेन	140
अमोघपाशमुद्रया	114	अहं मम करे दत्तं	6, 8, 10, 12
अमोघपाशमुद्रयं	117	अहो गन्धमयी पूजा	18
अमोघराज वज्राग्र्य	18	अहो न सदृशी मेऽस्ति	15
अमोघसिद्धेः संलेख्यं	20	अहो महाहासमहं	9
अमोघेश्वरमयीं कर्म	120	अहो महोपायमहं	13
अयं तत्समयो वज्रं	22	अहो रतीति वै प्रोक्ते	132
अयं बन्ध इति ज्ञात्वा	189	अहो वज्रमयं चक्र	11
अयं वज्रो महावज्र	60	अहो वीर्यमयो वर्मः	12
अयं वः समयो हन्याद्	60	अहो सत्त्वार्थानां	195
अयं हि कर्मसमय	195	अहो समन्तभद्रस्य	18
'अयाहि जः' समाकर्षा	30	अहो समन्तभद्रोऽहं	5
अयोरजांसि हि जुह्वन्	83	अहो सुख इति प्रोक्ते	29, 132
अर्गाङ्कुशीद्वया बाह्य	61	अहो स्वभावशुद्धोऽहं	6
'अर्थ-प्राप्तिर्' इति प्रोक्ते	29	अहो स्वयं भुवां गुह्यं	11
अलङ्कार महाशोभ	139	अहो हि परमं शुद्धं	110
अलातचक्रभ्रमया	75	अहो हि परमार्थोऽहं	10
अलातचक्रभ्रमिता	30	अहो हि पुष्पपूजाहं	16
अलाभात् सर्वसिद्धीनां	179	अहो हि बुद्धपूजाहं	45
अलिप्तं सलिलैः पद्मं	167	अहो हि बोधिचित्तस्य	34
अल्पत्वे वा बहुत्वे वा	167	अहो हि बोधिचैतस्य	57
अवज्र वज्र वज्राग्र्य	211	अहो हि सर्वबुद्धानां	10, 14, 15, 17, 18,
अवलोकितमहेशश्च	3		40, 59, 72, 89, 90, 110, 140.
अवलोकितेश धीराग्र्य	109	अहो हि संगीतिमयी	15
अवलोकितेश नाथाग्र्य	109	अहो हि साधुकारोऽहं	7
अवश्यो दिवसः कार्यो	167	अहो हि सुदृढो बन्धः	13
अवाच वज्रसिद्धयग्र	19	अहो हि स्वभिषेकोऽहं	7
अवाच वाच वाचाग्र्य	210	अहो ह्यग्राथ आत्मनः	212
अवाचो विश्वकर्मा च	3	अहो ह्यनुपमं तेजः	8
अविकल्पात्ततो ज्ञानात्	206	अहो ह्यमोघराजाहं	6

अहो ह्यमोघं बुद्धानां	12	आत्मनिर्यातिनाद् दिव्य	47
अहो ह्यसदृशः केतु	8	आत्मनिर्यातिनाद्यैवां	175
अहो ह्यसदृशाहं वै	15	आत्मनो दुःखदानाच्च	179
अहो ह्यहं महोदारा	16	आत्मनो वाथ परतो	173
अहो ह्यं(हीयं) महापूजा	16	आत्मानमुत्तमां सिद्धिं	120
अहो ह्यद्वारपूजाहं	16	आभिर्नृत्योपहारेण	104
अहो ह्यपायविनयं	56	आभिर्मुद्राभिरभ्यर्थं	68
आकर्षयत् सर्वबुद्धान्	74	आलेख्य चित्रलिखितं	156
आकर्षयत् सुसंकुद्धो	71	आलोकलोक लोकार्थं	109
आकर्षयेज्जगत्सर्वं	37	आवेशयतु तेऽद्यैव	22
आकर्षयेद्वज्रधरां	26	आसां त्वधिकमेकं तु	38
आकारुण्यादमैत्र्यात्तु	179	आस्फोटमहावज्रस्य	179
आकाशकाय कायाग्नय	210	आस्फोटयन् सुसंकुद्धः	71
आकाशकेतो महायष्टि	213	आहारतः सर्वबुद्धानां	175
आकाशगर्भकर्मग्रीं	156	आः ज्ञः होः सः उं आं त्रं हः	38
आकाशगर्भं वज्राढ्य	19	इति चोदनया शीघ्र	185
आकाशगर्भं सत्त्वार्थं	139	इति बुद्धन् महामुद्रा	167
आकाशगर्भसदृशः	166	इति ब्रुवन्नकार्याणि	167
आकाशगर्भसमयीम्	156	इत्यधिष्ठाय सत्त्वोऽह	197
आकाशगर्भं सत्सत्त्वं	155	इदं जपंस्तु हृदयं	184
आकाशधात्वः शीघ्रं	194	इदं तत्त्वं रहस्यं च	184
आकाशधातु सर्वांश	139	इदं तत्सर्वबुद्धत्वं	32
आकाशवल्लीपुष्पाणि	84	इदं तत्सर्वबुद्धानां	6-14, 186
आकाशाकाशसंभूत	139	इदं ते सर्वबुद्धत्वं	23
आकाशे रत्नसंकाशा	194	इदं भावयमानस्तु	192
आकाशे वान्यदेशे वा	42, 114, 127, 155,	इदं मणिकुले धर्मं	192
156, 169, 170.		इदं वदंस्तु धर्माग्रीं	166
आकृष्टा सुप्रविष्टाश्च	21	इयं रक्षा तु महती	179
आकृष्य प्रवेश्य बध्वा	26	इयं वज्रमणिः प्रोक्ता	145
आगच्छन् गच्छतो वै	193	इष्टके चतुरस्रे तु	63
आज्ञावतस्तु तत्कर्म	189	इष्टके तु चतुरस्रे	92
आज्ञां मार्ग्यं यथावत्तु	20	इहैव जन्मनि पदं	165
आत्मनश्च विसंवादान्	179	इहैव जन्मनि वरं	165
आत्मनस्तु ललाटे वै	150	ईषद्दंष्ट्राकरालास्यं	64
आत्मनस्तु समुत्सृज्य	166	उच्चारयन् रागेण स्त्रीं	86
आत्मनस्तेन कामेदं	165	उच्चारयन् समालिङ्ग्य	86

उच्चारयन् स्त्रिया सार्धं	86	कनिष्ठाङ्गुलिबन्धं तु	70
उच्चारयेत् सकृद्वारं	21	कनिष्ठाङ्गुलिमध्यं तु	70
उत्तमां सिद्धिमाप्नुयाद्	197	कनिष्ठाङ्गुष्ठबन्धं तु	93, 94
उत्थापयेन्मृतं सर्वं	70	कनिष्ठाङ्गुष्ठमुखयोः	28
उत्थितां तर्जनीं वामां	123	कनिष्ठाङ्गुष्ठविकचा	116
उत्थितो वा निषण्णो वा	42, 207, 209	कनिष्ठाङ्गुष्ठसन्धी तु	123
उद्योगात् सौरितां याति	166	कनिष्ठान्तरतोऽङ्गुष्ठौ	28
उपविश्य यथापायं	133	कनिष्ठाभ्यां तु विकचा	116
उपविश्य यथास्यायं	20	कनिष्ठा वज्रमुखतो	70
उपायस्तत्र चौदारां	203	कन्यसाग्रया मुखोत्थानान्	50
उपायस्तत्र मुद्रा हि	203	कराभ्यां भ्रामयन् तन्तु	121
उपायो निष्प्रपञ्चस्तु	203	कर्मक्रोधा सुकर्माणि	69
उपायो भावना तत्र	203	कर्मगुह्यान्तरस्थितैस्तु	38
उमापतिः प्रजानाथो	3	कर्ममण्डलयोगेन	194
उष्णीषे भावयन् भूयो	151	कर्ममुद्राधरो भूत्वा	187
ऋद्धयायुर्बलरूपाग्र्यो	26	कर्ममुद्राप्रयोगेन	121, 122, 168
एकतर्जनीसंकोचाद्	28	कर्ममुद्रामणि विधवा	151
एकहंकारमात्रेण	172	कर्ममुद्रा समासेन	77
एतत्पद्मकुले कर्म	168	कर्ममुद्रां तु बध्वा वै	143
एतद् बुद्धस्य बुद्धत्वं	168	कर्ममुद्रां समाधाय	131, 173
एतमेव समापत्त्यो	169	कर्ममुद्राः समासेन	69, 81, 85
एता एव महामुद्राः	153	कर्मवज्रकुलेऽप्येष	168
एताः समयमुद्रास्ते	97	कर्मवज्रमणि बध्वा	183
एवमुक्त्वा तु सर्वेषु	184	कर्मवज्र महाक्रोध	68
एवं तु भावयन् सत्त्वां	79	कर्मवज्रं तु पर्यङ्के	35
एवं तु सिद्धयो दिव्याः	206	कर्मवज्रां तु सन्धाय	29
एवं ब्रूवन्तु सर्वेषु	184	कर्मवज्रां समाधाय	38, 152
ओं ओं ओं ओमिति	131	कर्मवज्रिणि मुद्रायां	26
ओंकारमूर्ध्नि संस्था तु	94	कर्मसमयां द्विधीकृत्य	132
ओंकारेणैव सिध्यन्ते	172	कल्पनं मण्डले सर्वे	95
ओं वज्रसत्त्वसंग्रहाद्	32	कल्पोक्तैः स्वकृतैर्वापि	32
ओं वज्रसत्त्वः स्वयं ते	25	कवचा कनिष्ठदंष्ट्राग्र्या	30
कदा नु सर्वसत्त्वानां	208	काण्डान्यदृश्यपुष्पाणां	84
कनिष्ठाग्रा निबन्धेन	50	कामरत्याभिषेकाग्र्या	187
कनिष्ठाग्र्याङ्गुशैर्बन्धेद्	70	कामं सेव्य सुखात्मा तु	178
कनिष्ठाङ्गुशबन्धेन	76	कामाद्याः सर्वसौख्या मे	195

कामानामविरागस्तु	167	केतुक्रोधा हरेदर्थान्	69
कामिनी प्रियकारी तु	95	केतुः समुच्छ्रयः प्रोक्तः	188
कामेश्वरी सुरागित्वं	115	कोणभागेषु सर्वेषु	20
कामो हि भगवाञ्छब्धः	208	कोणेषु बाह्यसंस्थेषु	73
कायवाक्चित्तवज्रस्तु	205	कोशाग्रप्रहराकारा	76
कायवाक्चित्तवज्राग्र्य	47	क्रुद्धदंष्ट्राकरालास्तु	64
कायवाक्चित्तवज्राणां	189	क्रुद्धः स सर्वकार्याणि	170
कायवाक्चित्तवज्रेषु	47, 48	क्रोधदृष्टि समाधाय	36
कायवाक्चित्तवज्रैस्तु	25, 26, 68	क्रोधदृष्ट्या तु संक्रुद्धः	71
काये बुद्धसमाधिस्तु	176	क्रोधदृष्ट्या निरीक्षन् वै	38
कुङ्कुमं तु भगे विध्वा	85	क्रोधमुष्टि द्विधीकृत्य	69
कुञ्चिताग्र्य महाशङ्खा	117	क्रोधमुष्टिं प्रकुर्वन् वै	176
कुञ्चिताग्र्यमुखस्था तु	123	क्रोधयक्षा रिपुं खादेत्	69
कुञ्चिताग्र्यं पीडयस्तु	123	क्रोधराजसमाधिस्थः	177
कुञ्चिताग्र्या दंष्ट्रा तु	28	क्रोधवज्रमहापूजां	176
कुञ्चिताग्र्याङ्कुशी चैव	76	क्रोधस्फुटा महावज्र	208
कुञ्चिताग्र्यासु गच्छन्तं	94	क्रोधान् सत्त्वविशुद्ध्यर्थं	178
कुङ्मलाग्र्या मणिं बध्वा	145	क्रोधाभिज्ञां समुत्पाद्य	176
कुङ्मलाञ्जलिरग्रस्य	122	क्रोधोऽग्रयः सत्त्वविनये	100
कुङ्मलान्त्यमहापद्मा	117	क्षणादधुङ्कारमात्रेण	67
कुड्ये वाप्यथ वाकाशे	114	खगर्भः सुमहातेज	3
कुर्वन्त्यश्च भ्रमन्त्यो वा	169	खचित्तं वज्ररत्नेस्तु	20, 111, 140
कुर्वन्नच्छटसंघातं	21	खड्गमुष्टिग्रहद्वाभ्या	76
कुलगुह्यमहापूजां	196	खड्गाङ्कुशी तथाग्राभ्यां	123
कुशप्रवालांस्तैलेन	86	गम्भीरोदारसूत्रान्त	176
कुशलानां तु धर्माणां	205	गाढमङ्कुशबन्धेन	94
कृत्वा चतुर्विधां पूजां	75, 204	गाढमङ्कुशवज्रेण	70
कृत्वा तु मानसीं पूजां	196	गाढमुष्टिनिबन्धाश्च	76
कृत्वा तु मुखतोद्धान्तं	123	गायन् वै वज्रवाचा तु	75
कृत्वा तु वज्ररत्नेभ्या	174	गीतनृत्यरसाहार	50
कृत्वा तु सर्वरङ्गाणि	71	गीतया स्फुटवाचो नित्यं	29
कृत्वा तु साधयेत् सर्वं	26	गीतिसौख्यप्रपूजाभिः	46
कृत्वा धूपादिभिः पूजां	197	गुह्यगुह्याग्रमुष्टिस्तु	153
कृत्वा निरीक्षेल्लोकं	207	गुह्यगुह्याः समासेन	153
कृत्वोच्चार्य स्वकं नाम	20	गुह्यपूज महापूज	214
केचिदप्राप्तियोगेन	179	गुह्यपूजाचतुष्टेन	175

गुह्यपूजाविधि योज्य	196	चन्द्रमण्डलमध्यस्थः	24
गुह्यपूजां प्रकुर्वाणो	194	चन्द्रमण्डलमध्यस्थां	115
गुह्यभार्यामिति प्रोक्त्वा	181	चन्द्रमण्डलमध्ये तु	36,43,51
गुह्यमुद्रा द्विधीकृत्य	38	चन्द्रमण्डलमध्येषु	49
गुह्यमुष्टिसमुद्भूताः	76	चन्द्रे वज्रं स्वमात्मानं	80
गुह्यसिद्धिमवाप्नोति	184	चालयंस्तु समाकर्षे	67
गुह्याङ्कुशी दृढीकृत्य	89	चित्तज्ञानात् समारभ्य	25
गुह्ये वार्थमहत्कार्ये	38	चित्तस्फरणयोगेन	42
गृह्य बध्वा महामुद्रां	127	चिन्तामणिध्वजं नाम	9
ग्रन्थन(यन्) तर्जनीभ्यां तु	70	चिन्तामणिर्यथेच्छदा	145
ग्रन्थितं वज्रबन्धेन	61, 70	चिन्ताराज महातेज	139
चक्रस्य कोणसंस्थेषु	20	चिह्नमुद्रान् समोपेतान्	26
चक्रा सर्वाङ्गसंपीडा	98	चिह्नमुद्राः समालेख्या	36
चक्रो मण्डलयोगात्तु	188	चिह्नेभ्यस्तु महासत्त्वा	205
चतस्रः पद्मधूपाद्याः	112	चुम्बंस्तु दशनैरोष्ठं	68
चतुरन्त्यमुखासक्ता	63	छत्रध्वजपताकाभिः	176
चतुरन्त्यमुखासङ्गात्	71	छादितं ज्वालते तन्तु	85
चतुरश्रद्वारेषु वै	104	छिन्देद्यस्य पुरः पद्मं	121
चतुरस्रमुत्तरद्वारं	97	छेतारं सर्वशत्रूणां	10
चतुरश्रं चतुर्द्वारं	111	जगद्विनयधर्मं तु	190
चतुरस्रं चतुर्द्वारं	20, 63, 140	जगद्विनयमुद्राग्रीं	171
चतुर्भिः प्रातिहार्यस्तु	176	जगद्विनयमुद्रास्थः	187
चतुर्मुखं तु वै पद्मं	133	जगद्विनययोगेन	184
चतुर्मुद्राप्रयोगेन	161	जगद्विनयरूपस्थः	195
चतुर्विधाभिः पूजाभिः	168	जगद्विनयरूपं तु	191
चतुर्विधैर्निमितैस्तु	84	जपन् वै मन्त्रविद्यास्तु	175
चतुःकालयोगेन	168	जपंस्तु हृदयार्थेन	50
चतुःपद्ममुखं सत्त्वं	115	जपेते विनयैश्चापि	208
चतुःपुष्पा तु नामेन	94	जः हूं वं होः ब्रुवन् काये	26
चतुःप्रणामे पूजायां	186	जानन् वै पूजया सिद्धि	193
चतुःसूत्रसमायुक्तं	20,63,91,111,140	जापस्तु रुचितोऽप्यत्र	32
चत्वारो वज्रनाथाद्या	82	जिनप्रभ महाज्वाल	213
चन्द्रबिम्बं समारुह्य	24	जिह्वायां भावयन् पद्मं	126
चन्द्रबिम्बं समालिख्य	24	जिह्वायां भावयेद् वज्रां	30
चन्द्रबिम्बं स्वमात्मानं	43	जिह्वां तालुगतां कृत्वा	42
चन्द्रबिम्बाभिरुद्धस्तु	24	जुहुयात् कामफलां क्रुद्धः	84

जुहेत् तित्तफलं क्रोधान्	83	तत्तद् विज्ञाप्य मुद्रां तु	196
जः जः जः इति प्रोक्ते	37	तत्त्वचोदनया शीघ्र	177
ज्ञानपद्मं ददेद्यस्य	128	तत्त्वचोदनयोगेन	184
ज्ञानमुत्पाद्य विज्ञेयं	144	तत्परिष्वङ्गसौख्यं तु	186
ज्ञानमुष्टिं तु समयं	44	तत्र कोणेषु कर्तव्यं	65
ज्ञानमुष्ट्यां तु बद्धायां	30	तत्र ज्ञानेन विज्ञेयं	144
ज्ञानाभयाशोधनार्थं	212	तत्र तत्र तां मुञ्चे	39
ज्वालाग्री दृष्टदमनी	95	तत्र तत्र तु वै वेष्ट्य	69
ज्वाला परिग्रहा चैव	98	तत्र देवी यथाक्रम	104
ज्वालामण्डलमध्यस्था	68	तत्र पद्मं चतुर्वक्त्रं	112
ज्वालामध्ये लिखेत् तस्य	72	तत्र भावयमानस्तु	127
ज्वालामध्ये लिखेत् पद्मं	72	तत्र मध्ये मणिं लेख्य	149
ज्वालामध्ये लिखेद् रत्नं	64	तत्र मध्ये महासत्त्वं	64
ज्वालास्फुलिङ्गमोक्षा च	98	तत्र मध्ये लिखेत् तिर्यक्	72
तच्च बुद्धार्थतो योज्य	178	तत्र मध्ये लिखेत् पद्मं	118
तज्ज्ञानरत्नं संस्थाप्य	151	तत्र मध्ये लिखेत् सम्यग्	141
तण्डुलांस्तु जुह्वन् नित्यं	83	तत्र मध्ये समालेख्य	111
तत एवादिसत्त्वास्तु	205	तत्र मध्ये सुपद्मे तु	119
ततस्तु कल्पस्थायिन्यः	206	तत्र रत्ननिधानं तु	143
ततस्तु गुह्यपूजाभिः	21	तत्र लेख्यं महासत्त्वं	142
ततस्तु धर्मकर्मग्रन्थ	44	तत्र लोकेश्वरः कार्यः	111
ततस्तु नृत्यविधिना	74	तत्र वज्राभिषेकं तु	64
ततस्तु वज्रवेगेन	92	तत्र सरोजा विस्फारि	135
ततस्तुष्टाः समाजेन	21	तत्रस्थं तु समालेख्यं	141
ततस्तु सिद्धिकामो वै	175	तत्रस्थं रत्नवृष्ट्या तु	149
ततस्तु सूत्रणं तत्तु	91	तत्रस्थं वज्रगर्भं तु	141
ततः पद्मकुलकर्म	132	तत्रात्मा भावयेत् सत्त्वं	26
ततः प्रभृति बुद्धानां	193	तत्रारूढस्तु खे गामी	127
ततः प्रभृति यत्किञ्चिद्	42	तत्रारूढः स्वमात्मानं	127
ततः प्रभृति सिद्धात्मा	184	तथागतकुलशुद्धो	167
ततः शीघ्रं महामुद्रां	21	तथागतकुलं सैव	188
ततो गणादयः सर्वे	113	तथागतकुलानां तु	184
ततो द्वारेषु सर्वेषु	21	तथागतकुलेऽप्येष	167, 168
ततो बुद्धादयः सर्व	21	तथागत महाकाय	55
ततो मध्यस्थितो भूत्वा	63, 92	तथागत महाकेतो	139
तत्क्षणं सर्वबुद्धास्तु	21	तथागत महाचित्त	55

तथागत महातत्त्व	55	तन्निरीक्षणसौख्यं तु	187
तथागतमहादेव्यः	185	तन्मणि स्त्रीभगे विध्वा	151
तथागतमहामुद्रां	165	तया गृह्य तु वै पद्मं	127
तथागत महारत्न	139	तया तु मुद्राः सिध्यन्ते	204
तथागत महासत्त्व	139	तया निरीक्षता स्त्री तु	36
तथागतसमोऽहं हि	43	तया भावनया शीघ्र	113
तथागताभिषेकाग्रच	139	तया भावितया शीघ्र	204
तथा तथा हि सत्त्वार्थं	105	तयाभिषिक्तो बुद्धैस्तु	174
तथा मे रागदोषैस्तु	208	तया मालाभिषेकेण	174
तथा वज्रां तु चिह्नादि	188	तयैव ग्रस्तहुङ्कारा	69
तथेयं कर्मवज्रं ते	98	तर्जनी गले बन्धा तु	76
तथैव नृत्यन् मुक्त्वा तु	87	तर्जनी दृढसंकोचा	124
तथैव नृत्यन् वामां तु	74, 87	तर्जनी दृढं संकोचा	70
तथैव नृत्यविधिना	75	तर्जनीद्वयवज्रा तु	69
तथैव नृत्यं छिन्देद् वै	75	तर्जनीद्वयसंकोचा	116
तथैव नृत्यं मुक्त्वा तु	75	तर्जनीनखसंस्का	69
तथैव नृत्यं सूर्यान्तु	74	तर्जनीमणिसंस्थाना	146
तथैव पद्मखड्गा तु	123	तर्जनीमध्यवज्रा च	69
तथैव वज्रबन्धं तु	123	तर्जन्यग्रमुखासङ्गा	152
तथैव वज्रबन्धा तु	124	तर्जन्यङ्कुशबन्धेन	30
तथैव वज्रबन्धे तु	123, 124	तर्जन्या तर्जनीकर्षा	152
तथैव वलितां कृत्वा	123	तर्जन्या तर्जनीं गृह्या	116
तथैव सर्वपाश्वेषु	119	तर्जन्यानामसंकोचा	122
तथैव सर्वस्थानेषु	43	तलचक्रा तथैवेह	124
तथैव संहरेत् तत्तु	79	तस्मात् कामविरागित्वं	51
तथैव सूक्ष्मविधानेन	80	तस्य केसरमध्ये तु	111
तथैवाग्रया मुखसङ्गान्	69	तस्य चक्रप्रतीकाशं	20
तथैवाविष्टमात्मान	23	तस्य तस्य तथा चैव	169
तथैवाशेषमुत्पद्य	23	तस्य पाश्वेषु सर्वेषु	64, 111, 112, 118,
तथैवावेशविधिना	25	119, 125, 133, 141, 142,	
तथैवोङ्कारमुद्रा तु	98	148, 149.	
तथैवोत्थाय मुद्रास्थः	20	तस्य मध्ये यथान्यायं	148, 158
तथा खे धातवः शुभ्रा	193	तस्य मध्ये यथायोगं	97
तदा जानीत मतिमां	193	तस्य मध्ये लिखेत् सम्यग्	88
तदाभिप्रायं वै यान्ति	194	तस्य मध्ये लिखेद् बुद्धं	79
तदराज्यं विविधैर्दोषैः	80	तस्य मध्ये सपत्नीकं	103

तस्य मध्ये समालेख्यं	125	तेजोराशी विख्याता	94
तस्य मध्ये सुपद्मे वै	118	तेन कल्प इति प्रोक्तो	206
तस्य युष्माभिः पुरतः	60, 61	तेन कारुण्ययोगेन	79
तस्य सर्वपार्श्वेषु	118	तेन गन्धेन संयोज्य	133
तस्य स्थेयं पुरः शश्वद्	61	तेन मुद्रां स्पृश्यां तु	50
तस्यापि त्रिगुणं कुर्यात्	91	तेन यच्चिन्तयेत्कार्यं	170
तस्याभ्यन्तरतस्तत्र	97	तेन यच्चिन्तयेत् किञ्चित्	170
तस्याभ्यन्तरतः कार्यं	140	तेन यं सत्त्वमुद्धीक्षेत्	170
तस्याभ्यन्तरतः पद्मं	135	तेनाक्रमीत यं देवं	67
तस्याभ्यन्तरतः प्राज्ञो	63	तेभ्यो वै वज्रकायेभ्यो	205
तस्याभ्यन्तरतः सूत्रं	111	तेषामुद्धरणार्थाय	179
तस्याविरागो धर्मोऽस्मिन्	166	तेषां ग्रहणतो मुद्राः	194
तस्यास्तु सर्वपार्श्वेषु	149	तेषां तु सर्वपार्श्वेभ्यो	79
तस्याः पार्श्वेषु सर्वेषु	73	तेषां तु संशोधनार्थाय	79
तस्याः सुप्रतिवेदित्वा	176	तेषां प्रतिबिम्बानि	193
तं तु गृह्णन् क्षणाच्चैव	114	तेषां सर्वेषु पार्श्वेषु	82
तं दृष्ट्वा ज्ञानसत्त्वं तु	26	तेषां संशोधनार्थाय	42
तं प्रविष्ट्वैव शीघ्रं वै	184	तैरेव तु समिद्भिस्तु	83, 84
तं प्रियं यस्य रमयेत्	156	तोषयेत् सर्वबुद्धानां	26
तादृशेष्वेव बिम्बेषु	169	त्यागेन बुद्धसत्त्वाभ्यां	180
तान्येवाकाशनीलानि	169	त्रिलोकचक्रसंकाशं	100
ताभिः पद्मं तु संभाव्य	152	त्रिलोकविजयं कुर्वन्	92
तामेव मूर्धादारभ्य	94	त्रिलोकविजयं नाम	63
तामेवानाममध्याभि	94	त्रिलोकविजयं भाव्य	187
तामेवोत्तानसंस्थां स्व	94	त्रिलोकविजयाकार	191
तारय चोत्तरा सिद्धिः	115	त्रिलोकविजयाकारं	184, 190
तासां बन्धं प्रवक्ष्यामि	27, 29, 76	त्रिलोकविजयाग्रीं वै	170
तासां सर्वेषु पार्श्वेषु	97	त्रिलोकविजयाद्यास्तु	97
तां तु मूर्ध्नि प्रतिष्ठाप्य	152	त्रिलोकविजयाद्यास्तु	86
तां दृष्ट्वा नहि बिभ्येत	194	त्रिलोकविजया नाम	69
तां मुद्रामाविशेद्यत्र	143	त्रिलोकविजयाभ्यां तु	79
तिर्यग्बज्रे लिखेद् वज्रं	73	त्रिलोकविजया मुद्रा	70
तीर्थिकानां विनाशाय	186	त्रिलोकविजयां बध्वा	68, 70
तीर्थिकानां हितार्थाय	185	त्रिलोकविजयी शम्भुः	4
तुष्टः सन् सर्वकार्याणि	74	त्रिशूले मध्यशूलं तु	94
तेजसां हुतभुग् ज्येष्ठः	101	त्रैधातुक महाराज	211

त्वदधि हि संबोधि	56	दुर्दुष्टसममुख्या	42
त्वयापि हि सदा धार्य	32	दुर्दुष्टा हि ये सत्त्वा	79
त्वामभिष्टुत्य नामाग्रे:	214	दुर्दृष्टीनां विरक्तानां	199
त्वामासाद्य जिनाः सर्वे	214	दुर्याधन सुवीर्याग्रय	19
दक्षिणग्रस्तमुसला	95	दुष्टमैत्रीवि(नि)रासश्च	100
दक्षिणज्वालसन्दर्शा	95	दुष्टसत्त्वोपघाताय	168
दक्षिणं तु लिखेत् पाद	64	दुष्टानां तु हरन्नर्थान्	182
दक्षिणाग्रयाभिमुखतः	195	दुष्टानां विनयार्थाय	191
दक्षिणेनार्थदायी च	94	'दुःखच्छेद' इति प्रोक्ते	29
दण्डकाष्ठा तु नैर्वाणी	95	दुःसाध्यापि हि मुद्रा वै	134
दण्डमुष्टिग्रहा चैव	98	दूर्वाप्रवालान् सघृतान्	83
दण्डाग्रा घातनी चैव	95	दृढप्रतीतिमुखासक्ति	48
दण्डात् समो न निर्घातो	100	दृढवीर्यमहारक्षं	13
दद्याद् बुद्धाभिषेकाणि	26	दृढानुरागसंयोग	48
दन्तपङ्क्ती तथा वज्रं	72	दृढानुस्मृतिमाञ्छीघ्रं	24
दर्शनस्पर्शनाभ्यां तु	166	दृढीभव इति प्रोक्ते	181
दर्शयन् नृत्यविधिना	75	दृष्ट्वा तु भुक्त्वा तत्पद्म	127
दंष्ट्राभीषणयोगान्तु	188	देशयन् सर्वपापान् या	130
दंष्ट्राः शुद्धः प्रविष्टस्तु	101	देशयेत् सर्वपापानि	130
दंष्ट्रासंस्थानयोगाच्च	76	द्वयेन्द्रियसमापत्ति	48
दानपारमितापूर्णः	204	द्वयेन्द्रियसमापत्या 43, 68, 135, 144, 156,	
दान प्रदान दानाग्रय	109	157, 160, 181, 183	
दानमग्रयं हि पुण्यानां	204	द्वारपालस्तु कर्तव्या	142
दानात् समो न धर्मोऽस्ति	167	द्वारमध्येषु सर्वेषु	20
दरिद्राणां हितार्थाय	166	द्वितीयं द्वारकोणं तु	111
दारिद्र्याच्चैव सत्त्वानां	179	द्विधीकृत्य तु तद्वज्रं	94
दिव्यचक्ष्वादयोऽभिज्ञा	176	द्विवज्राग्रयाङ्गुली सम्यक्	70, 71
दिव्यचक्ष्वादियोगेन	170, 171	द्वयग्रानामविकासा तु	152
दीप दीपाग्रय दीपोग्र	109	द्वयग्रा मणिस्तथा पद्मं	122
दीपनाथ महादीप	109	द्वयग्रा संस्था भृकुट्यां तु	69
दीपपूजा महादीप्ति	31	द्वयङ्गुष्ठमुखपीडं तु	123
दीपया लोकशुद्धित्वं	29	द्वयङ्गुष्ठविकचा सा तु	38
दीप्तकृष्टिरिति प्रोक्ता	36	द्वयङ्गुष्ठानामिका वज्रा	152
दीप्तदृष्टिः सुसूक्ष्मा तु	193	द्वयन्ते प्रवेशितमुखी	98
दीप्तदृष्ट्या निरीक्षन् वै	37	धर्मकर्ममयीमुद्रां	183
दुरतिक्रमो यथाभेद्यो	206	धर्मक्रोधा हरेद् धर्मान्	69

धर्मगुह्याः पुनश्चिह्नैः	38	नानाचार्यस्य नान्यस्य	193
धर्मचक्रप्रतीकाशं	91	नान्यदस्ति हि तेनेयं	187
धर्मचक्रसमाकारं	183	नामाष्टशतकं च तद्	211
धर्मतत्त्वार्थं सद्धर्मं	109	नासा हुंकारयोगेन	182
धर्मदानादपुण्योऽपि	204	नित्यं बुद्धमनस्कारो	179
धर्मधातु समप्राप्त	210	निधानं खनते यत्र	143
धर्ममण्डलयोगेन	100, 128	निधानं तत्र विज्ञेयं	143
धर्ममुद्राप्रयोगेण	168, 197	निबध्य वज्रकवचं	27
धर्ममुद्रास्तथैवेह	85	निबध्योष्णीषसंस्था तु	195
धर्ममुद्रास्तु ता एव	69	निबन्धेत्तालया सर्वा	39
धर्ममुष्टिं द्विधोक्त्य	81, 128	निरीक्षन् यस्य नाम्ना तु	75
धर्मरत्न विशुद्धाग्र्य	139	निरीक्षन्नन्धतां याति	81
धर्मरत्ना प्राप्तं धर्मं	145	निरीक्षेद् वज्रदृष्ट्या वै	121
धर्मराज महाशुद्ध	109	'निर्भयस्त्वम्' इति प्रोक्ते	29
धर्मवज्रा हृदिस्था तु	122	निर्भिद्य तत्क्षणं यायाद्	22, 25
धर्मवज्रां समाधाय	28, 38, 116	निर्यातयन्मनोवाग्भिः	176
धर्मवज्रीं समाधाय	174	निर्यातयं जिनेष्वस्तु	166
धर्मवज्रयादयो लेख्याः	118	निर्यातयं भवेच्छीघ्रं	48
धर्मसिद्धिमवाप्नोति	182	निर्यातयस्तु बुद्धानां	48
धर्मा लोक सुतेजाग्रथ	109	निर्यातयस्तु बुद्धेभ्यः	50, 162
धारयन् वाचयन् श्राद्धः	191	निर्यात्य बुद्धपूजायां	186
धिक् धिक् धिक् धिक् धिगिति प्रोक्ते	131	निर्युक्ताङ्गुष्ठबन्धा तु	28
धी धी धी धी-ति प्रोच्यन् वै	131	निर्वाणं सर्वदुःखानां	100
धूपया तु मनोह्लादं	31	निहत्य चक्षुर्दशे तु	196
धूपया ह्लादयेद् लोक	29	निक्रम्य हृदयाद्विश्वो	205
धूपा ह्लादं शुभं पुष्पा	115	नीलकण्ठा महाकर्षा	115
धे धे धे धे-ति प्रोच्यन्	131	नृत्यतः पूजयन्नात्मा	46
ध्यानं सर्वसमत्वं हि	100	नृत्यं सलीलवलिता	117
ध्वजबन्धेन सा एव	123	नृत्योपहारपूजाभिः	104
ध्वजाग्रं चैव सज्वालं	35	पञ्चमण्डलशोभं तु	141
नमस्ते वज्रधर्माय	214	पञ्चमण्डलसंस्थेषु	72
नमस्ते वज्रसत्त्वाय	214	पञ्चमी बुद्धमुद्रा तु	27
नवेन सुनियुक्तेन	20	पञ्चाभिज्ञः स्वयं भूत्वा	176, 177
न सा रूपि न चारूपि	213	पञ्चाभिज्ञामवाप्नोति	24, 170, 171
नातिक्रमन्त्यामरणा	189	पटादिषु समालिख्य	150, 151
नातिस्यन्दितजिह्वाग्र	208	पठेद्वा भावयेद्वापि	211

पताका तु समानाम	28	पद्मं गृह्य कराभ्यां तु	196
पतिं वापि प्रियां वापि	161	पद्मं गृह्य दृढं सम्यक्	121
पतेद्यत्र तु तद् राज्य	80	पद्मं गृह्य पुरः स्थाति	121
पतेद्यत्र तु पश्येत्	23	पद्मं गृह्य प्रदातव्यं	127
पतेद्यत्र सुसंक्रुद्ध	80	पद्मं तु योषितां चिन्त्य	122
पतेद्यत्र हि तं देश	80	पद्मं तु हृदये लिख्य	113
पदशः सर्वमेवाहं	165	पद्मं हस्तेन वै गृह्य	133
पद्मकर्ममयीं मुद्रां	131	पद्मः कोशः सुचक्रो वाक्	3
पद्मखड्गस्य मुद्रेयं	117	पद्माङ्कुश्यादयो मुद्राः	119
पद्मगुह्यमहामुष्टि	124	पद्माञ्जलि समाधाय	117
पद्मचन्द्रा महाकान्ति	115	पद्मात्मक महापद्म	109
पद्मचिह्नधरा लेख्य	111	पद्मालोकादियोगेन	112
पद्मचिह्नधरालेख्या	112	पद्मोद्भव सुपद्माभ	109
पद्मचिह्नसमोपेताः	119	परमाणुरजःसंख्य	8
पद्मचिह्नः समालेख्यः	118, 119	परिक्रमेत गर्वेण	20
पद्मतारस्य मुद्रा तु	117	परिणामनः पूजाभिः	47
पद्मतारस्य मुद्रेयं	117	परिवर्त्य च हासा तु	123
पद्मनर्तेश्वरी सिद्धि	115	परिवर्त्य तथा चैव	76
पद्मपद्ममहाबिम्बं	133	परिवर्त्य तथोष्णीषे	75, 87
पद्मपद्ममहासत्त्वं	120	परिवर्त्य तु पद्मेन	117
पद्मपद्मा समार्धि तु	115	परिवर्त्य द्वयोर्वज्र	89
पद्मप्रतिष्ठां सत्त्वान् स्वं	115	परिवर्त्य ललाटे तु	61, 74, 87
पद्मप्रतिष्ठाः समालेख्याः	35	परिवर्त्य स्थापयेन्मूर्ध्नि	70
पद्म बिम्बं स्वमात्मानं	173	परिवर्त्य स्मितस्था तु	76
पद्ममध्ये लिखेत्पद्मं	119	पर्यङ्कस्थं मणिं पूर्वं	148
पद्ममुष्टि तु वामेन	209	पर्यङ्कस्था समुत्ताना	44
पद्ममुष्णीषमध्ये तु	114	पर्यङ्के तु लिखेद् वज्र	35
पद्मरत्नध्वजाग्री तु	116	पर्यङ्के वज्रपद्मं तु	35
पद्मवज्रधरस्यैता	122	पर्यङ्के वज्रा वज्रां तु	35
पद्मश्रियं वशीकुर्यात्	113	पर्यङ्के सुस्थितं चैत्यं	35
पद्मश्रीनाथ नाथाग्र	109	पश्यते तादृशं चैव	169
पद्मसत्त्व महापद्म	109	पश्यन् गृह्णेद्यथा तं तु	114
पद्मसत्त्विसमार्धि तु	115	पाणिद्वयमये चन्द्रे	27
पद्मसूर्येति विख्याता	116	पाणी प्रभावयं वज्रं	24
पद्मस्फोटा महाबन्धा	116	पातयित्वाक्षरपदे	59
पद्महस्त महाहस्त	109	पातयेद् गृहमध्ये तु	80

पातयेद्यत्र राज्ये तु	80	प्रक्षिप्य घट्टयेत्तत्र	84
पानमुद्रा च माला च	98	प्रचण्डा दुष्टदमनी	115
पापच्छेद महाखड्ग	214	प्रज्ञया भावयन्नेव	204
पापशुद्धिनिमित्तं हि	192	प्रज्ञाग्रयः सर्वबुद्धानां	27
पापसत्त्वहितार्थाय	191	प्रज्ञाघोषानुगा नाम	204
पापानि देशयेच्छीघ्रं	130	प्रज्ञानैर्वेधिकी नाम	204
पालयन् वज्रसत्यं तु	171	प्रणामपरमो नित्य	195
पालयंस्तु महासत्यं	171	'प्रति-शब्द' इति प्रोक्ते	29
पालयेत्सत्यमेतद्धि	171	प्रतिश्रुत्कोपमानुक्त्वा	47
पालयेत्सत्यसमयं	171	प्रत्यहं प्राग्यथाकालं	27
पालयेदुत्तमं सत्य	171	प्रत्यालीढसमाक्रान्तं	64
पिताहमस्य च सुतो	110	प्रत्यालीढमुसंस्थानं	88, 207
पीडयेत् क्रोधमुष्टि तु	70	प्रत्यालीढं समास्थाय	67
पीडयेत् तत्र तां मुद्रां	143	प्रत्यालीढाकृतिं कृत्वा	71
पीडयेद् वज्रबन्धेन	75	प्रद्वुतप्रचलच्चक्षुः	36
पुनश्च हृदये बन्धे	124	प्रध्वस्तभृकुटीभङ्ग	36
पुनस्तु संहरेत् तत् तु	42	प्रयोक्तव्योऽत्र समये	39
पुरतः पद्मघण्टया	114	प्रवर्तयन् स्त्रियं कान्तां	86
पुरतः प्रकाशयेन्मुद्राः	193	प्रविशन्ति क्रमित्वापि	64
पुरतो वज्रसत्त्वं च	172	प्रविशंस्तु भगे क्रुद्धः	183
पुरतस्तस्य बध्नीयात्	114	प्रविश्य मण्डलमिदं	87, 88
पुरस्तस्य समाकर्षेत्	114	प्रविष्ट्वा मण्डलं सम्यग्	88
पूजयन् सर्वपूजाभिः	159	प्रविष्ट्वा मनसा सर्वं	25
पूजयन् सर्वबुद्धान्स्तु	47, 159, 160	प्रविष्ट्वैव हि तद्गुह्यं	184
पूजयन् सर्वबुद्धान् हि	159	प्रवेशेन्निष्क्रमेद्वापि	92
पूजाकर्मविधिं योज्य	196	प्रवेश्य तु महामुद्रां	151
पूजाग्रसमयानां तु	147	प्रवेष्टुं सर्वबुद्धानां	212
पूजाभिज्ञां समुत्पाद्य	177	प्रसारितभुजा मूर्ध्नि	69
पूजार्थं बुद्धवज्रिभ्यां	104	प्रसारितसमाङ्गुष्ठ	28
पूजितोऽनेन धर्मेण	47	प्रसारिताग्रा पृष्ठस्था	94
पूर्णचन्द्रमण्डलारूढो	51	प्रसारिताङ्गुलीमण्डा	38
पूर्वं धूपादिभिः पूजां	175	प्रसारिताङ्गुष्ठमुखा	146
पृष्ठतोऽग्राङ्गुलिग्रस्तं	60	प्रसारिताङ्गुलिपुटा	117
पृष्ठतोऽग्रयाङ्गुलिग्रस्तं	70	प्रसारिताश्रिता पाणौ	94
प्रकृतिप्रभास्वरा धर्मा	47	प्रसारितास्तु संधाय	152
प्रकृतिप्रभास्वराः सर्वे	42	प्रहारो निग्रहाग्रयो हि	101

प्रह्लादयेज्जगत्सर्वं	27	बध्वा वै समयाग्रीं तु	131
'प्रह्लादिनि' मनःसौख्यं	29	बध्वा वै सर्वमुद्रास्तु	173
प्राग् दर्शयन्ति चात्मानं	170	बध्वा समयाग्रीन् वै	144
प्राप्तपद्मसमाधिस्तु	126	बन्धयेद् वज्रनिगडा	31
प्राप्नुयादुत्तमां सिद्धिं	194	बन्धयेद्वा बन्धयेद्वा	39
प्राप्नोति सर्वगामित्वं	25	बन्धं समयमुद्राया	60
प्रामोद्यराज वज्राग्रय	18	बहुचक्रप्रवेशाच्च	205
प्रियया तु स्त्रिया सार्धं	84	बहुजापप्रदानाच्च	205
प्रिये प्रिये-ति वै प्रोक्ते	132	बाहुग्रन्थिकटाग्रधाभ्यां	30
प्रीतिप्रामोद्य वज्राग्रय	19	बाहुबन्धेन बध्नीयाद्	36
प्रीतिवेग रतिप्रोते	213	बाहुवज्रं समाधाय	69
बद्धाभिः समाग्रयाभिः	168	बाहुवेष्टनवेष्टा च	98
बद्धा हि वज्रबन्धाग्रय	189	बाहुसंकोचचक्रा तु	98
बध्नीयात् सर्वमुद्रास्तु	173	बाहुसंकोचलम्बा च	95
बध्नीयाद् विधिवत्तां तु	144	बाह्यकोणेषु मुद्रा वै	97
बध्वा कर्ममयीं मुद्रां	143, 144, 159	बाह्यतश्च यथायोगं	37
बध्वा चैकतमां मुद्रां	128	बाह्यतस्तस्य निःक्रम्य	91
बध्वा चैकतमां सम्यक्	130	बाह्यमण्डलकोणेषु	20, 142
बध्वा चैकतरां मुद्रां	159	बाह्यमण्डलमुद्रास्तु	76
बध्वा चैकतरां सम्यक्	127	बाह्यमण्डलसंस्थेषु	20, 65
बध्वा तु कर्ममुद्रां वै	145	बाह्यमण्डलेषु पुन	97
बध्वा तु पुरतस्तं तु	26	बुद्धचक्षोर्महाचक्षो	110
बध्वा तु वै महामुद्रां	144	बुद्धज्ञान महाबुद्ध	55
बध्वा तु समयाग्रीं वै	143, 144, 172	बुद्धत्वं तेन कामेदं	165
बध्वा धर्ममयीं मुद्रां	173	बुद्धत्वं सर्वसत्त्वानां	168
बध्वानामाङ्गुलिमुखा	152	बुद्धधर्म महाधर्म	210
बध्वा बुद्धमहामुद्रा	115	बुद्धधर्म महाबुद्ध	109
बध्वा यथा शीघ्रं	209	बुद्धधर्ममहामुद्रा	167
बध्वा रत्नप्रतिष्ठां तु	152	बुद्धधर्मसमाधि तु	190
बध्वा ललाटगा चैव	152	बुद्धधर्म सुधर्माग्रय	213
बध्वा वज्रमणिं पूर्वं	182	बुद्धपूजाग्रपुण्या हि	204
बध्वा वै कर्ममुद्रां तु	131, 151	बुद्धपूजा महापूजा	55
बध्वा वै कर्मसमयां	131	बुद्धपूजासु शपथां	171
बध्वा वै रत्नवज्रां तु	150	बुद्धपूजां प्रकुर्वन् वै	171
बध्वा वै वज्रपर्यङ्क	189	बुद्धबिम्बमयं सर्वं	24
बध्वा वै समयाग्रं तु	131		

बुद्धबिम्बं जटामध्ये	133	बुद्धानामादिवचने	204
बुद्धबिम्बं निवेश्यादौ	49	बुद्धानां देहिनां चैव	168
बुद्धबिम्बं मुखे बिध्वा	113	बुद्धानुस्मृतिमान् भूत्वा	177, 190
बुद्धबिम्बं ललाटे तु	113	बुद्धानुस्मृतियोगेन	190
बुद्धबिम्बं स्वमात्मानं	25, 43, 80, 115	बुद्धानुस्मृतिसिद्धः	26, 68
‘बुद्ध बोधि’ इति प्रोक्ते	29	बुद्धाभिषिक्त बुद्धाग्र्य	110
बुद्धबोधिप्रवर्तारं	63	बुद्धाभिषेक मूर्धाग्र्य	110
बुद्धबोधिरिदं ज्ञानं	213	बुद्धाभिषेकसमयां	120
बुद्धबोधिरियं ज्ञानं	177	बुद्धाभिषेका समालेख्या	119
बुद्धबोधिसमाधिं तु	181	बुद्धाभिषेकां बध्वा वै	115
बुद्धमुद्रां तु बुद्धत्वं	145	बुद्धार्थो बुद्धहृदयः	4
बुद्धमुद्रां तु संधाय	172	बुद्धेश्वरी तु बुद्धत्वं	115
बुद्धरत्नं विशुद्धाङ्गं	139	बुद्धो धर्म इति ख्यात	167
बुद्धरूपं महारूपं	109	बुध्य बुध्य प्रवर्तन्तु	131
बुद्धवज्रधरादीनां	100, 104	बुध्य बुध्य महासत्त्वि	185
बुद्धवाक्सिद्धिमाप्नोति	27	बोधाग्री नाम मुद्रेयं	30
बुद्धविद्योत्तमस्येयं	116	बोधिचित्तदृढोत्पादाद्	46
बुद्धशासनरक्षार्थं	178, 208	बोधिचित्तमहाबोधे	55
बुद्धसत्त्व सुसत्त्वाग्र्य	109	बोधिसत्त्वमहाबिम्बं	80
बुद्धसौरित्वमाप्नोति	165	ब्रह्मनाथ महाब्रह्म	109
बुद्धस्य क्रोधसमयान्	72	ब्रह्मन् स्वयंभू भगवन्	210
बुद्धस्य पुरतो वज्रं	64	ब्रूयाद्यत्र निधानं तु	143
बुद्धस्य सर्वतः कुर्यान्	92	भक्तिर्वै वज्रहंकारे	179
बुद्धस्य सर्वतः सर्वाः	129	भक्षणी वज्रदंष्ट्रा तु	95
बुद्धस्य सर्वतो लेख्याः	111	भगवानिति भावयन्	197
बुद्धस्य सर्वपाश्वर्षेण	20, 79, 82	भगेन प्रविशन् रक्षै	183
बुद्धहंकरहंकर	56	भगेन प्रविशन् स्त्रीणां	183
बुद्धः शुद्धो महायान	4	भगेन प्रविशेत् कार्यं	25
बुद्धाग्र्य बुद्धवज्राग्र्य	55	भगेन प्रविष्टया वै	81
बुद्धाज्ञाकारितार्थं हि	178	भयात्तुल्यो न विघ्नास्ति	101
बुद्धाज्ञाच्छोधनार्थाद्वा	167	भयात्मनाम भयदो	168
बुद्धाज्ञां सत्त्वशुद्धयर्थं	178	भवेयं सर्वसत्त्वानां	166
बुद्धाज्ञां सर्वसत्त्वार्थात्	165	भव्यं भूतं भविष्यं च	207
बुद्धादयो महासत्त्वां	111	भारकाम महावज्र	18
बुद्धाधिप जिनाज्ञाकृद्	55	भारप्रमर्दिन् वज्रोग्र	19
बुद्धानामविकल्पं तु	206	भार्या ह्येतास्तव विभो	184

भावयञ्छीघ्रं सिद्धस्तु	23	भावयेत् सर्वशुद्धिं तु	113
भावयन् ज्ञानमुद्रां तु	144	भावयेत् स्तुनुयाद् वापि	110
भावयन्तं स्वमात्मानं	95	भावयेत् स्वयमात्मानं	121, 173
भावयन् धर्मतामेता	168	भाषामार्गेण सिद्धिस्तु	145
भावयन् ध्यानमुद्रां तु	150	भोमां श्रियं सरस्वतीं	97
भावयन्तभिषेकं तु	150	भूमौ यक्षमुखं लिख्य	196
भावयन्निदमाद्यं तु	192	भूर्भूर्भूर्भूरिति प्रोक्तो	131
भावयन् पद्मपद्मन्तु	115	भृकुटिः क्रोधशमनी	115
भावयन् पद्ममुष्णीषे	114	भृकुट्या नाशयेत्सर्वं	69
भावयन् पूजयेद् बुद्धा	195	भौमानां समयो ह्येष	60, 70
भावयन् बुद्धबिम्बानि	48	मञ्जुश्रो वज्रगाम्भीर्यं	19
भावयन् बुद्धमात्मानं	187	मणयो ह्यविकल्पास्तु	206
भावयन् बोधिसत्त्वांश्च	170	मणिकोशा हरेदर्थान्	146
भावयन् भवते तत्तु	23	मणिग्रहाग्रदंष्ट्रा तु	152
भावयन् भूमिसंस्थानि	23	मणिचिह्नप्रयोगैस्तु	149
भावयन् याचयेदर्थान्	155	मणिचिह्नसमोपेताः	149
भावयन् याचयेद्वत्तानां	155	मणिचिह्नान् समासेन	141
भावयन् यावदिच्छेत्	23	मणिदृष्टिस्तु सा ख्याता	146
भावयन् लोकनाथं च	173	मणिद्वन्द्वेति विख्याता	147
भावयन् वज्रगर्भं च	173	मणिपूजा सुपूज्यत्वं	145
भावयन् वज्रनेत्रं तु	24	मणिबन्धेति विख्याता	147
भावयन् वज्रबिम्बानि	47	मणिमालाभिषेका तु	145
भावयन् वज्रसत्त्वं च	172	मणिमालां मणिं पद्मे	148
भावयन् वज्रसत्त्वाद्याः	44	मणिमुखाग्रययोः कुर्यान्	152
भावयन् वज्रसत्त्वांस्तु	48	मणिस्तु मध्यमाभ्यां तु	152
भावयन् विभावयन् वै	166	मणिं ध्वजाग्रकेयूरा	152
भावयन् सर्वबुद्धांस्तु	48	मण्डलस्य तथा श्रेष्ठ	97
भावयन् स्वमात्मानं	80, 120	मण्डलस्य तु कोणेषु	65
भावयन् स्वयमात्मानं	115, 121	मण्डलस्य तु मध्यं वै	91
भावयन्तु मणीनेव	152	मण्डलं तु समालिख्य	135
भावयन्तु महामुद्रा	120, 135, 144, 150, 168	मण्डलं सूक्ष्मवज्रां तु	50
		मण्डलाग्राणि सर्वाणि	103
भावयेच्च सदा तुष्टः	205	मण्डलाचार्यशिष्याणां	28
भावयेत्कर्ममुद्रां तु	151	मण्डलानि लिखेत्प्राज्ञ	184
भावयेत्पद्ममुष्णीषे	126	मण्युदग्रया संतोषका	145
भावयेत्सत्त्ववज्रां तु	150	मदनी मदनी तीव्रं	95

मदातुल्यो न धैर्यास्ति	100	महात्मसत्त्वचर्याग्र	210
मध्यकुड्मलयोगेन	116	महाधर्मं सुधर्माग्रय	109
मध्यमण्डलमध्ये तु	20	महाधीर महावीर	109
मध्यमण्डलसंस्थेषु	82	महानीलोत्पलरुचं	64
मध्यमाङ्गुष्ठमुखयो	61	महापद्मकुले त्वेष	167
मध्यमाङ्गुष्ठरत्ना तु	27	महापद्मकुले विद्या	169
मध्यमाङ्गुष्ठवज्रं तु	70	महापद्मसमाधिस्थः	193
मध्यमान्तरसंकोचान्	27	महापापो महाग्रयाग्रयः	4
मध्यमाभ्यां नखसन्धानान्	146	महाप्रभ महालोक	210
मध्यमाभ्यां मणिं बध्वा	152	महाप्रभ महाशुद्ध	213
मध्यमा मणियोगेन	147	महाबोधिरियं ज्ञानं	177
मध्यवज्रजटा मूर्ध्नि	116	महाभिषेक लोकार्थं	139
मध्यानामान्त्यपद्मा च	38	महाभूतः सुसत्त्वार्थः	3
मनसः प्रतिवेधेन	213	महाभूतोद्भवं सर्वं	186
मनसा कर्मवाग्भ्यां वा	179	महामणिकुलानां तु	184
मनसा चैव जानाति	143	महामणिकुले धर्मः	167
मनसा पश्यते रूपं	170	महामण्डलयोगेन	35, 42, 46, 49, 51, 72,
मनसा मारयामीति	67		79, 82, 86, 88, 118, 125,
मनसा वर्मयेत्काय	67		129, 135, 148, 154, 158,
मनसा साधुयोगेन	27	महामुद्राप्रयोगेण	165, 168, 209
मनसोद्घाटयेच्चैव	63, 92	महामुद्रां तु वै बध्वा	185
मनःशिलां भगे बिध्वा	84	महामुद्रां तु सन्धाय	144
मनीषितविधानैस्तु	206	महामुद्रां समाधाय	143, 165, 169, 170
मनोत्क्षिप्य रेखातु	64	महामुद्राः समासेन	38
मनोष्णीषमहारक्षा	95	महामुष्टे समुद्राग्रय	214
मन्त्र्यते गुह्यसिद्धयत्वं	206	महायानाभिसमयं	19
मलादिभिः प्रपूजाभिः	46	महारक्ष महासार	214
महाकर्म महारक्ष	210	“महारति” रतिं दिव्यां	29
महाकर्माग्रयमुद्राभिः	21	महारत्न सुरत्नाग्रय	139
महाकवचयोगेन	67	महावचन विद्याग्रय	210
महाकारुणिकाग्रयाग्रय	210	महावज्रकुले त्वेष	167
महाकारुण्यमुत्पाद्य	211	महावज्रधरादिश्च	104
महात्मचिह्नविश्वस्तु	206	महावज्रमणिं पूर्वं	146
महात्मनां महामुद्रा	189	महावज्रमणिं बध्वा	31, 145, 146, 151,
महात्मनां स्वमुद्राभि	189		174
महात्मयष्टि रत्नेश	140	महावज्रसमोऽहं हि	43

महाविद्योत्तममयीं	94	मुखधात्री हृदि खड्गा	44
महाविश्व महालोक	109	मुखोर्णा च मुखोद्धान्ता	98
महावीर सुवीराग्र्य	210	मुद्राबन्धं प्रवक्ष्यामि	98
महावैरोचन विभो	55	मुद्रा भार्या परिवृतं	183
महासत्त्वप्रयोगेण	158	मुद्राभिः समयाग्र्याभिः	21
महासत्त्वमहामुद्रां	20	मुद्रामण्डलमध्ये तु	133
महासत्त्व महावीर्यं	213	मुद्रामेकतरां बध्वा	207
महासत्त्वार्थं कार्यार्थं	210	मुद्रेयङ्कर्मसमया	93
महासत्त्वाः समालेख्या	42, 141	मुद्रेयं धर्मसमया	116
महासत्त्वो महामुद्रः	4	मुद्रेयं मणिचिह्नस्य	146
महासन्धि महामुद्र	214	मुष्टिसंस्था भुजा वा च	94
महासमय तत्त्वार्थं	55	मुसला दुष्टनिर्घाता	95
महासिद्धिमवाप्नोति	184	मूर्धन्वक्षस्तु वक्त्रस्था	44
महास्थानुर्महाकालो	4	मूर्धस्था चैव गणिका	98
महाहर्षकरं ज्ञान	1	मूर्ध्निस्था च समानाम्	146
महाहर्षं महामोद	213	मृतस्य मूर्ध्नि सन्धाय	89
महेश्वरमुमां चैव	68	मेघघूलित हुंकार	208
महोपाय महासिद्धे	55	मेरुमर्दनपाषाण	36
मातरश्च भगिन्यश्च	97	मैत्रीदृष्टिरितिख्याता	36
मानुष्यमवताराग्र्यं	212	मैत्रीदृष्ट्या निरीक्षन् वै	38
मायावज्रसुसिद्धिस्तु	95	मैत्री यस्य सत्त्वस्य	42
मायोपमं जगदिदं	100	मैत्रीस्फरणतायोगः	175
मारणं समयं त्वग्र	186	मैत्रीस्फरणतायोगात्	79
मारणं सर्वसत्त्वानां	192	मैत्रीस्फरणयोगेन	42
मारयन्मारयेल्लोकं	182	मैत्रेयादिस्वचिह्नानि	36
मारयन् सर्वबुद्धांस्तु	181	य इदं शृणुयात्कश्चि	205
मारयेत् जगत्सर्वं	67	यक्षः सुराक्षसो धीरः	3
मारयेत् सर्वसत्त्वान्	37	यच्चित्तं सर्वसत्त्वानां	188
मारयेत्सर्वसत्त्वांस्तु	105	यच्चित्तोत्पादमात्रेण	11
मालाबन्धा मुखोद्धान्ता	30	यच्छुद्धयर्थं विरक्तानां	6
मा विरागय सत्त्वार्थं	181	यच्छोधयति शुद्धानां	8
मा वो जीवितनाशाय	60	यतो यतः समुत्पन्नाः	39
मुक्ताफलं मुखे बिध्वा	121	यत्करोति हि कर्म वै	166
मुक्त्वा मुद्रां यथाविधि	74	यत्कामरतिपूजाभिः	15
मुखकर्णशिरः पृष्ठ	48	यत्कार्यं चिन्तयेत्प्राज्ञः	196, 197
मुखतश्च समुद्धान्ता	76	यत्कार्यं वदते तत्तु	196

यत्किञ्चिच्चिन्तयेत्प्राज्ञः	196	यथा तथा क्रियते वै	209
यत्कोलोपमधर्माणां	10	यथा तथा निषण्णस्तु	207
यत्तथागतगन्धो वै	17	यथा तथा स्थितश्चैव	209
यत्तथागतचक्रस्य	18	यथा तथा हि कुपितो	181
यत्तथागतरत्नत्वं	16	यथा पद्ममलिष्ठं तु	208
यत् तथागत सौख्यार्थं	72	यथा यथा हि विनयाः	105
यत् तोषयन्ति पूजाभिः	15	यथा रक्तमिदं पद्मं	113
यत्त्रैधातुकराज्याग्र्यं	15	यथा राज्ञां स्वमुद्राभिः	189
यत्पादाग्रस्पर्शनापि	90	यथा लिख्य हि कल्प्यन्ते	206
यत्पुण्यं तेन सर्वो हि	214	यथालेख्यानुसारं तौ	145
यत्प्रज्ञया अरूपिण्या	10	यथालेख्यानुसारेण	68,207
यत्प्रयुञ्जन्ति बुद्धार्थे	9	यथा वज्रधरः सिद्धिः	165
यत्सत्त्वविनयाद्याति	57	यथावदनुपूर्वेण	43,92,93,148
यत्सत्त्वार्थतया शान्ता	13	यथावद् गुह्ययोगेन	187
यत्सत्त्वावेशयोगाद्धि	17	यथावद् वज्रगुह्ये तु	153
यत्सत्त्वोपायविनयात्	56	यथावद् विधियोगेन	187
यत्सर्वपतयो भूत्वा	18	यथावद्विनयं चैव	168
यत्सर्वबन्धमुक्तानां	17	यथावन्मणियोगेन	147
यत्सर्वबुद्धार्थसिद्धयर्थं	7	यथा वर्णो तु तौ वेत्ति	169
यत्सर्वबुद्धाशुसिद्धयर्थं	14	यथा विनयतो विश्वं	211
यत्सर्वव्यापिनो बुद्धाः	6	यथा विनयो लोको हि	203
यत्सर्वाणुप्रविष्टापि	17	यथा विषयवान् भूत्वा	177
यत्सर्वाणुप्रसंख्या वै	18	यथा सत्त्वस्तथा मुद्रा	197
यत्सर्वाशापरिपूर्णाणां	8	यथा स्थानेषु वै मुक्ता	39
यत्सर्वाशाप्रसिद्धयर्थं	13	यथा स्थानेषु संस्थेया	77,81
यत्स्वभावविशुद्ध्या वै	14	यथा हि भगवान् शाश्वो	188
यत्र भूयो भवेच्छङ्का	144	यथा हि समयैस्तीव्रैः	189
यत्र मुद्रा दृढीभूयान्	144	यथेच्छास्फरणान्चित्तं	42
यत्र वा तत्र वा तद्वै	170	यथेयं रणितघण्टा	98
यत्र शङ्का भवेत्तत्र	144	यदनाभोगबुद्धार्थं	12
यत्रस्थस्य समावेशो	144	यदा तु कम्पते शीर्षं	156
यत्रस्थः कर्ममुद्रां तु	144	यदा तु ज्वालते तत्तु	156
यत्रस्थो ज्ञानवान् भूयान्	144	यदा तु पश्यते खे तु	194
यत्रस्थो दृढतां यायान्	144	यदा तु स्फुटते तत्तु	156
यत्र ह्युपायविनयाद्	110	यदा तु हृदयं कम्पेत्	156
यत्राविकल्पः कल्पात्मा	206	यदा न लघु सिद्धिः स्यात्	184

यदा पश्येत्तदा गृह्णात्	127	यस्य सत्त्वस्य येनैव	68
यदा पश्येत् तदा गृह्णेत	114	यस्य सौरे जुहेन्माल्यं	84
यदा मुद्रा समाधिर्वा	193	यस्या यस्यास्तु मुद्राया	69
यदा मोक्षं स्वयं यायान्	144	यः कश्चिद् धारयेन्नाम्ना	19,140
यदालोकवती क्षिप्रं	16	याचयेत्सर्वरत्नानि	156
यदि क्रोधं समाविशेत्	61	याचयेदभिषेकाणि	156
यदेकः सन्नशेषस्य	15	याचयेद् देहि मे धर्मं	156
यद् दृढत्वादकायानां	12	याचयेद् देहि सिद्धि मे	156
यद् दृढत्वादकायोऽपि	5,14	यादृग्वर्णं समासेन	169
यद् देशयन्ति सद्धर्मं	11	यादृशानि तु पश्येद्वै	169
यद् बुद्धत्वमहत्त्वं तु	45	यावत्तः स्फुरते तं तु	79
यद्ववञ्जनृत्तविधिना	16	यावदारुहते स्थान	23
यद् विकल्पप्रहीणानां	7	यावदिच्छति वज्रात्मा	24
यद् विनयवशाद् धीराः	34,212	यावदिच्छति शुद्धात्मा	24
यन्निःसंगा अपि जिना	7	यावद् यः समयाग्रयो वै	38
यन्मया हि समाकृष्टा	17	यावन्तो भावा विद्यन्ते	193
यन्महत्त्वात्स सूक्ष्मोऽपि	40	यां यां मुद्रां तु बध्नीया	50
यन्मुद्राणां हि सर्वासा	14	यां स्त्रियं चिन्तयन् मृदुं	196
यन्मृतोऽपि हि कायोऽयं	89	येदमुच्चारयेत्सम्यग्	214
यस्तु कश्चित्परित्रार्थे	60	ये सर्वात्मस्थिता ह्येता	38
यस्तु क्रोधो निरीक्षेत	60	यैवं सर्वात्मना गौणं	110
यस्तु गौणमिदन्नाम्नां	19	यो गायस्तु स्तुयात् सोऽपि	56
यस्तु सत्त्वहितार्थाय	68	योजयेद्वज्रगीतां तु	27
यस्मादनादिनिधनं	214	योषितां वा प्रियाणां वा	183
यस्माद्वज्रदृढं चित्तं	56	रक्तपद्मं दृढं गृह्य	121
यस्य क्रुद्धः सदीप्तेन	67	रक्तपुष्पफलान् चापि	83
यस्य दद्यात् स सुवशीः	128	रक्तः सन् सर्वकार्याणि	134
यस्य नाम्ना तु पद्मं वै	121	रक्ते रक्ततरे क्रुद्धं	169
यस्य नाम्ना तु हृदयं	75	रक्षंस्तु समयं गुह्यं	204
यस्य नाम्ना स भ्रियते	80	रक्षायै यस्य सत्त्वस्य	60
यस्य यस्य च सत्त्वस्य	169	रक्षेत् सर्वमिदं लोचम्	37
यस्य यस्य तु सत्त्वस्य	67	रञ्जयेद्वा रागयेच्चैव	178
यस्य रागसमापत्तिः	167	रत्नकेतु महावज्र	19
यस्य वै सत्त्वकायं तु	70	रत्नकोशा महाकोशं	145
यस्य सत्त्वस्य या मुद्रा	26,95	रत्नचिह्नसमोपेतान्	142
		रत्नदंष्ट्रा हरेदर्थं	145

रत्नमुष्टि तु बध्वा वै	209	रागशुद्धये विरक्तानां	186
रत्न रत्नाग्र्य रत्नोग्र	139	रागसक्तस्तु विधिव	171
रत्नलास्यादयो लेख्या	142	रागसौख्यविपाकार्य	194
रत्नवज्राङ्कुरां बध्वा	152	रागः शुद्धात्मनां शुद्धो	182
रत्नवज्रा समाङ्गुष्ठ	28	रागाच्छुद्धतरन्नास्ति	167
रत्नवज्रां दृढीकृत्य	39	रागात्त्वमसि संभूत	175, 184
रत्नवज्रां समाधाय	37, 145	रागानुस्मृतियोगेन	190
रत्नवज्रघान्तु बद्धायां	28	रागाभिज्ञां समुत्पाद्य	176
रत्नवर्षाणि वर्षेयं	208	रागावलोकनं मैत्री	178
रत्नसंभवमुद्रायां	30	रागो विकल्पसंभूतः	206
रत्नसंभवमुद्रां तु	152	रागो वै नावमन्तव्यो	178
रत्नसंभव रत्नोर्ण	139	रागो हि नावमन्तव्यो	182
रत्नस्तु रचनादुक्तः	188	रामयन् पद्मपद्माग्री	122
रत्नहंकारयोगेन	196	रामयन् बुद्धमुकुटां	122
रत्नं करोज्ज्वलं कुर्यात्	35	रामयन् वज्रपद्माग्र्या	122
रत्नाकर सुदीप्ताङ्ग	139	रामयन् विश्वपद्माग्री	122
रत्नाङ्कुश्या समाकर्षेत्	145	रामारामशुद्धिस्तु	182
रत्नाट्टहासनाम्ना वै	146	रूपादीनां तु कामाना	162
रत्नाधिकाधिकतर	139	“रूपोद्योतेति” वै प्रोक्ते	29
रत्नालोक महालोक	139	रोचनां तु भगे स्थाप्य	85
रत्नोत्कर सुरत्नोत्थ	139	ललाटद्वयसन्धाना	161
रत्नोत्तम महाकाश	139	ललाटस्था शिरः पृष्ठे	44
रत्ना तु पूजयन्नात्मा	46	ललाटे तु प्रतिष्ठाप्य	161
रमयन् परदाराणि	87, 187	लास्या रतयो दिव्याः	29
रागधर्म महापद्म	184	लास्या रति धनं माला	115
रागपारमिताप्राप्ते	166	लिङ्गमाक्रम्य तेनैव	67
रागयेत्क्रोधरागा तु	69	लिङ्गं चैत्यमधिष्ठाय	50
रागयेत् सर्वसत्त्वान्	37	लेख्या मुद्रा प्रयोगेन	185
रागयेद् वज्रपाणैस्तु	31	लोकनाथ त्वलोकाग्र्य	139
रागयेन्मारयोगेन	36	लोकपालो नभो भूमि	3
रागवज्रप्रयोगेन	28	लोकाक्षराक्षरमहा	109
रागशुद्धः सुखासमः	105	लोकेशनामजापश्च	180
रागशुद्धः स्वभावेन	166	लोकेश्वरकुले जापः	175
रागशुद्धितया पद्मं	188	लोकेश्वरमहं भाव्य	187
रागशुद्धिर्महामैत्री	180	लोकेश्वरमहामुद्रां	130, 131
रागशुद्धिं परीक्षन् वै	178	लोकेश्वरमहासत्त्वं	120

लोकेश्वरसमाधिन्तु	130	वज्रगर्भं स्वमात्मान	37
लोकेश्वरसमाधिस्थो	177	वज्रगर्भं स्वमूर्धे तु	156
लोकेश्वरसमापत्ति	131	वज्रगर्भं हृदि लिख्यं	156
लोकेश्वरसमापत्त्या	126, 131, 132	वज्रगर्भादिभिः पूर्णं	20
लोकेश्वरं सुवज्राक्ष	19	वज्रगर्वाप्रयोगेण	30
लोकेश्वरं समालिख्य	114	वज्रगर्वा महादेवी	185
लोकेश्वरं स्वमात्मान	121	वज्रगर्वा दृढीकृत्य	31
लोकोज्यं सत्यविभ्रष्टो	203	वज्रगर्वा समाधाय	195
वज्रकर्मगतं क्षिप्रं	27	वज्रगीता सुगीता त्वं	31
वज्रकर्मप्रयोगेण	75	वज्रगीतां ततो बध्वा	187
वज्रकर्ममणिं दद्यान्	145	वज्रगुह्याः पुनश्चैता	38
वज्रकर्म महारक्ष	55	वज्रचक्रधरं सेव्य	27
वज्रकर्म सुकर्माग्र्य	214	वज्रचक्रप्रयोगा तु	152
वज्रकर्म सुवज्राज्ञा	19	वज्रचक्रं समाधाय	31
वज्रकार्यप्रयोगेण	85, 160	वज्रचक्रां दृढीकृत्वा	29
वज्रकुण्डलिपूर्वास्तु	92	वज्रजापप्रयोगेण	173
वज्रकेतुधरं सेव्य	27	वज्रजिह्वां यथावत् तु	72
वज्रकेतुधरो भूत्वा	28	वज्रज्ञानप्रयोगेण	81
वज्रकेतु महाकेतु	213	वज्रज्ञानं तु बुद्धानां	29
वज्रकेतु सुसत्त्वार्थ	19	वज्रतीक्ष्ण महाकोश	214
वज्रकेतुं समुत्क्षिप्य	74	वज्रतीक्ष्ण महायान	19
वज्रकोशां तु संगृह्य	28	वज्रतुष्ट्या जिनाः सर्वे	31
वज्रकोशां दृढं बध्वा	31	वज्रतुष्ट्या जिनैः सर्वैः	28
वज्रक्रोधमहादृष्ट्या	75	वज्रतेज महाज्वाल	19
वज्रक्रोधसमाधिस्थः	193	वज्रतेज महातेज	213
वज्रक्रोधसमापत्त्या	66, 67, 75, 80, 83, 85	वज्रतेजा भवेच्छीघ्रं	26
वज्रक्रोधाङ्गुलिं बध्वा	209	वज्रत्वमुपयास्यन्ति	32
वज्रक्रोधाङ्गुलीमुत्था	89	वज्रदंष्ट्रं समाधाय	31
वज्रक्रोधाङ्गुली सम्य	75, 87	वज्रदंष्ट्राग्रमुद्रया	29
वज्रक्रोधान् स्वमात्मानं	81	वज्रदंष्ट्रायुधं तीक्ष्ण	13
वज्रगर्भमहामुद्रां	143, 156, 159	वज्रदंष्ट्रे तथा लेख्ये	36
वज्रगर्भसमाधिन्तु	143, 156, 159	वज्रदंष्ट्रे समाधाय	75
वज्रगर्भसमाधिस्थः	177	वज्रदृष्टिस्तु संराग	36
वज्रगर्भं मुखे बिध्वा	156	वज्रदृष्टि समाधाय	193
वज्रगर्भं ललाटे तु	156	वज्रदृष्ट्या तु स स्त्रीणां	196
वज्रगर्भं समालिख्य	155	वज्रदृष्ट्या निरीक्षन् वै	37

वज्रदृष्ट्या निरीक्षेद्वै	67	वज्रपद्मं सुपद्माङ्ग	109
वज्रद्वारेषु सर्वेषु	93	वज्रपद्मं गले कृत्वा	66
वज्रद्विकसमुद्भूताः	69	वज्रपद्मं लिखेद् दिव्यं	72
वज्रद्विकं मणिकृत्वा	145	वज्रपद्मं समाधाय	115
वज्रधर्मगायनैश्च	32	वज्रपद्मां दृढीकृत्य	174
वज्रधर्मधरो भूयाद्	27	वज्रपर्यङ्कसंस्थं तु	207
वज्रधर्मप्रयोगेण	51	वज्रपाणिबलो भूत्वा	190
वज्रधर्म महाधर्म	213	वज्रपाणिमहाबिम्बं	43, 80
वज्रधर्मसमाधिस्थः	115	वज्रपाणिं स्वमात्मानं	37, 80
वज्रधर्मसमोऽहं हि	43	वज्रपाणैर्जुहेन्माल्यं	84
वज्रधर्मं सुतत्त्वार्थं	19	वज्रपुष्पां तु संयोज्य	27
वज्रधर्माय ते साधु	51, 88, 105, 135, 180, 189, 198, 209, 214	वज्रप्रभं प्रभोद्योत	55
वज्रधातुप्रतीकाशं	20, 35, 42, 46, 49, 51, 63, 72, 79, 82, 86, 88, 111, 118, 125, 129, 133, 140, 148, 154, 158, 184.	वज्रफुलां समाधाय	31
वज्रधातुप्रयोगेण	65, 68, 117	वज्रबन्धं त्वधो दानात्	28
वज्रधातु महासत्त्व	210	वज्रबन्धविनिर्मुक्तं	25
वज्रधातो महागुह्य	55	वज्रबन्धसमुद्भूताः	44
वज्रधात्वग्रमणिना	145	वज्रबन्धं तले कृत्वा	70, 76, 123
वज्रधात्वादिमुद्रासु	28	वज्रबन्धं दृढीकृत्य	48 50, 60, 63, 70, 71, 89, 94, 116, 117, 123, 146, 147.
वज्रधात्वोश्वरीं बध्वा	122	वज्रबन्धं शिरोमूर्ध्नि	117
वज्रधात्वोश्वरीं मुद्रां	173	वज्रबन्धं समाग्रं तु	116
वज्रधात्वोश्वर्याद्या	174	वज्रबन्धं समाधाय	62, 71, 94, 116, 146, 152.
वज्रधार्यासु शपथां	171	वज्रबन्धाग्रचक्रा तु	146
वज्रध्वजां समुच्छ्राप्य	31	वज्रबन्धां समानीय	122
वज्रनाथ महानाथ	210	वज्रबाणपरिक्षेपा	74
वज्रनाथः सुभूम्यग्रयो	4	वज्रबिम्बमयं सर्वं	23
वज्रनामाभिषेकाद्यैः	19	वज्रबिम्बं तु जिह्वायां	23
वज्रनृत्यपूजया	31	वज्रबिम्बं निधिस्थं तु	23
वज्रनृत्यप्रयोगेण	74, 87, 104	वज्रबिम्बं समालिख्य	23, 66, 80
वज्रनृत्यभ्रमोन्मुक्तं	30	वज्रबिम्बं स्वमात्मानं	43, 173
वज्रनृत्यां तु संयोज्य	27	वज्रभाषप्रयोगेण	29
वज्रनेत्रं स्वात्मानं	37	वज्रभाष महाभाष	214
वज्रनेत्रादिभिः शुद्धं	20	वज्रभाष सुविद्याग्र्य	19
		वज्रभृकुटिमध्ये	72

वज्रमण्डलमध्येऽस्मिन्	72	वज्ररत्नं समाधाय	152, 160, 161
वज्रमण्डलयोगेन	103	वज्ररत्नं समालिख्य	150
वज्रमध्ये लिखेत् पद्मं	36	वज्ररत्नं स्वमुष्णीषे	150
वज्रमध्ये लिखेद् बुद्धं	42	वज्ररत्नाङ्कुरां बध्वा	152, 174
वज्रमालानिबन्धस्तु	27	वज्ररत्नाभिषेकेण	207
वज्रमुद्रायां बध्वा	70	वज्ररश्मि महातेज	19
वज्रमुद्राद्वयं भूयात्	30	वज्ररागमहामुद्रा	26
वज्रमुद्राद्विकं बध्वा	50, 60, 70, 94	वज्रराग महाशुद्ध	213
वज्रमुष्टिप्रयोगेण	30	वज्रराग महासौख्य	18
वज्रमुष्टि महामुद्र	55	वज्रराज महावज्र	213
वज्रमुष्टिरिति ख्याता	94	वज्रराज सुबुद्धाग्रथ	18
वज्रमुष्टि दृढां बध्वा	29, 30	वज्रराजाग्रथ वज्राग्रथ	55
वज्रमुष्टि द्विधीकृत्य	117	वज्रलास्यादिपूजां तु	104
वज्रमुष्ट्यग्रसमय	19	वज्रलास्यादिभिर्गुह्य	103
वज्रमुष्ट्याहरेत् सर्वं	31	वज्रलास्यादियोगेन	112
वज्रयक्ष महाक्रोध	214	वज्रलास्यादिसन्धीनां	69
वज्रयक्ष महोपाय	19	वज्रलास्या रतिं दद्याद्	31
वज्रयक्षं तु वै साध्य	27	वज्रलास्यां तु वै साध्य	27
वज्रयान महाज्ञान	55	वज्रलास्यां समाधाय	187
वज्ररक्ष महाधैर्य	19	वज्रलोकेश्वरी सिद्धि	115
वज्ररक्ष महावर्म	214	वज्रवर्म निबध्वा	31
वज्ररक्षां दृढां बध्वा	60	वज्रवर्मप्रयोगेण	36
वज्ररक्षां दृढीकृत्य	70	वज्रवर्मा दृढीकृत्वा	29
वज्ररत्नकुलं त्वेदं	140	वज्रवाग्वज्रदृष्टिभ्या	209
वज्ररत्नप्रयोगेण	94, 146	वज्रवाचा वदेत् सम्यग्	67
वज्ररत्नमयी मुद्रा	145	वज्रविद्याधाराबन्धः	60
वज्ररत्न महाराज	213	वज्रविद्योत्तमस्येयं	94, 116
वज्ररत्नसमाधिस्थो	196	वज्रविश्वधराच्छ्रीघ्रं	24
वज्ररत्न सुवज्रार्थ	19	वज्रविश्वस्य मुद्रेयं	94
वज्ररत्नस्य मध्ये तु	148	वज्रविश्वं स्वमात्मानं	37
वज्ररत्नं तु जिह्वायां	150	वज्रवेग इति ख्यात	92
वज्ररत्नं तु पर्यङ्के	35	वज्रवेगेन चाक्रम्य	20, 64, 65, 72, 73, 92,
वज्ररत्नं तु हृदये	150		93, 111, 112, 119,
वज्ररत्नं नभे लिख्य	150		141, 142, 149
वज्ररत्नं ललाटे तु	66, 150	वज्रवेगेन निष्क्रम्य	79, 111, 118, 148
वज्ररत्नं लिखेच्चैव	72		

वज्रवेगेन निःक्रम्य	64, 65, 72, 92, 93,	वज्रसूत्रपरिक्षित	20
	112, 142	वज्रसूर्या बध्वा वै	28
वज्रवेगैः समाक्रम्य	82	वज्रसूर्या समाधाय	31
वज्रशूला महामुद्रा	95	वज्रसेनं समालेख्यं	65
वज्रशौण्डादयश्चैव	97	वज्रस्तम्भाग्रसंस्थेषु	63
वज्रशौण्डादयः सर्वे	92	वज्रस्तम्भाग्रस्थ चन्द्र	20
वज्रसत्त्व इति ख्यात	205	वज्रस्फोटन्तु संयोज्य	27
वज्रसत्त्वचतुष्कस्य	28	वज्रस्फोटा तु बन्धयाद्	29
वज्रसत्त्वत्वमाप्नोति	190	वज्रस्मितां समाधाय	31
वज्रसत्त्वमयं सर्वं	24	वज्रहासप्रयोगेन	28
वज्रसत्त्वमहामुद्रां	170, 172	वज्रहास महाहास	19, 213
वज्रसत्त्व महावज्र	55	वज्रहासविधिं योज्य	27
वज्रसत्त्व महासत्त्व	18, 213	वज्रहंकारमन्त्रस्य	70
वज्रसत्त्वसमाधिन्तु	190	वज्रहंकारमुद्रां तु	87
वज्रमत्त्वसमाधिस्तु	168	वज्रहंकारमुद्रां वै	183
वज्रसत्त्वसमाधिस्थः	169, 170, 189, 195	वज्रहंकारयोगेन	195
वज्रसत्त्वसमाधिस्थो	177, 183	वज्रहंकारजापेन	67
वज्रसत्त्वसमाधीना	192	वज्रहंकारमुद्रां तु	74
वज्रसत्त्वस्य नामापि	51	वज्रहंकारमुद्रां वै	174
वज्रसत्त्वं स्वमात्मानं	51	वज्रहेतु महाचक्र	214
वज्रसत्त्वः सकृज्जप्तो	32	वज्रहेतु महामण्ड	19
वज्रसत्त्वः स्वयन्तेज्य	22	वज्रं गृह्य तु पाणिभ्यां	75
वज्रसत्त्वः स्वयमहं	185	वज्रं तु यस्य सत्त्वस्य	79
वज्रसत्त्वः स्वयमेव	208	वज्रं त सर्वतो वक्त्रं	36
वज्रसत्त्वः स्वयंसिद्धो	21	वज्रं रत्नं तथा पद्मं	111
वज्रसत्त्वादयः सत्त्वा	170	वज्रं वज्रपरियुक्तं	35
वज्रसत्त्वादियोगेन	46	वज्रं वज्राङ्कुशं चैव	72
वज्रसत्त्वादिसत्त्वानां	30, 32	वज्रं सत्त्वे द्दीकृत्वा	213
वज्रसत्त्वे सकृद्द्वारां	179	वज्रं सुप्रतिवेधत्वा	188
वज्रसत्त्वो महासत्त्वः	206	वज्राग्रयाभ्यां स्वकुक्षौ तु	71
वज्रसत्त्वो रुचिजसिः	39	वज्राङ्कुशद्वयं	61
वज्रसन्धि सुसान्निध्य	19	वज्राङ्कुश महाकाम	55
वज्रसाधुबन्धेन	28	वज्राङ्कुशसमाकर्षात्	27
वज्रसाधु महातृष्टि	213	वज्राङ्कुशं समालिख्य	67
वज्रसाधो सुसत्त्वाग्र्य	18	वज्राङ्कुशः समाकर्षेद्	29
वज्रसूक्ष्म महाध्यान	55	वज्राङ्कुशादयश्चेटा	93

वज्राङ्कुश्या समाकर्षेत्	31	वशित्वाच्च सुतेजस्त्वाद्	74
वज्राङ्कुश्यां बद्धमात्रायां	28	वाङ्मुद्राणां तु तत्सर्वं	197
वज्राङ्गुलिमुखाभ्यान्तु	62	वाणघन्तनयोगाच्च	30
वज्राङ्गुलि समाधाय	117	वाणप्रक्षेपयोगेन	36
वज्राचार्यत्वगौरव्यं	100	वामत्रिशूलपृष्ठे तु	76
वज्राचार्यः प्रविष्ट्वा तु	20	वामपादसमाक्रान्त	64
वज्राञ्जलिन्तु सन्धाय	116	वामपादेन तं सत्त्वं	70
वज्राञ्जलिसमुद्भूता	38	वाममुद्रागुह्यकरः	209
वज्राञ्जलिं दृढीकृत्य	62, 71, 117	वामवज्रमहामुष्ट्या	91
वज्राञ्जलिं समाधाय	116	वामवज्राग्रबन्धेन	98
वज्राञ्जलिः समाख्यातो	27	वामवज्राङ्गुलिं गृह्य	71
वज्रात्मक सुवज्राग्र्य	55	वामवज्राङ्गुलिर्ग्राह्यं	30
वज्राभिषेकमालां तु	174	वामस्थबाहुदण्डा च	30
वज्राभिषेक वज्राभ	55	वामाग्र्याङ्गुष्ठजापात्	117
वज्राभिषेका राज्यत्वं	68	वामाङ्गुष्ठमुसंस्था तु	94
वज्राभोगं महोदर्यं	19	विकसिताङ्गुष्ठमुखयो	116
वज्रायुः सर्वगामो तु	68	विचित्रवर्णसंस्थानं	127
वज्रां वज्रचक्रं तु	36	विजृम्भन् भावयेद्वज्रं	36
वज्रालोकमहामुद्रा	27	विज्ञयेत्सर्वसत्त्वार्थं	21
वज्राविष्टः स्वयं भूत्वा	23	विज्ञेय श्रद्धच्छुद्धो	186
वज्रावेशविधिं योज्य	25, 27	विदार्य स्वेन्द्रियं गृह्णेद्	50
वज्रावेशं समालेख्यं	65	विदिशाश्चारयोगेन	91
वज्रावेशे समुत्पाद्य	25, 26, 39	विद्यते वेदनासिद्धि	206
वज्रावेशे समुत्पन्ने	23	विद्यातन्त्रेषु संतोषः	179
वज्राञ्जलितलैः सूक्ष्मं	25	विद्यामन्त्रविशेषाणां	204
वज्रिणो गुह्यसमय	182	विभूते सर्वसंपत्ते	140
वज्रिपुष्पां जुहेत् क्रुद्धो	84	विभो महाविनय नेयार्थ	210
वज्रोत्तम महाग्रचाग्र्य	55	विमोक्षो बोधिसत्त्वाश्च	4
वदन् धर्ममयीं मुद्रा	166	विरागविनयो लोको	203
वन्द्यः पूज्यश्च मान्यश्च	56	विरागसदृशं पाप	51
वन्द्यो मान्यश्च पूज्यश्च	214	विवारयेत संक्रुद्धो	71
वलिता सुरतिः प्रोक्ता	122	विश्वरूपसमाधिन्तु	135
वलितोद्वलितं कुर्या	60	विश्वरूपसमाधिस्थो	115
वलितोद्वलितं कुर्वन्	70	विश्ववज्रसमोऽहं	43
वलितोद्वलितं कृत्वा	60	विश्ववज्रं सुकवचं	73
		विश्ववज्राङ्गवज्रोऽग्र	56

विश्वेश्वरमहामुद्रां	121	सत्त्वक्रोधा महादाढ्यं	69
विश्वेश्वरमहामुद्रां	121	सत्त्वरगणयोगेन	188
विश्वेश्वरादयो लेख्याः	125	सत्त्ववज्रया तु संसिद्धः	26
वैरस्फरणतायोगात्	79	सत्त्ववज्रायान्तु बद्धायां	28
वैरोचनो जिनो नाथः	4	सत्त्ववज्रायान्तु मुद्रायां	26
वैश्वरूपं वैनैयास्तु	115	सत्त्ववज्रहृदात्मानं	43
शङ्खमङ्गुष्ठदण्डोत्था	123	सत्त्ववज्र दृढीकृत्य	70
'शत्रुभक्ष' इति प्रोक्ते	29	सत्त्ववज्र प्रतिष्ठाप्य	66
शब्दापर्यस्तु हस्तेन	36	सत्त्ववज्राङ्कुशीं बध्वा	21
शम्भुशङ्कर शुद्धार्थ	109	सत्त्ववज्रादयो लेख्या	36
शश्वद् गेयं स्तुयात् सोऽपि	19	सत्त्ववज्रां दृढीकृत्य	27, 94
शाक्यराज महाज्ञान	210	सत्त्ववज्रां समाधाय	37
शाक्यसिंह महाशाक्य	210	सत्त्ववज्रां हृदि बध्वा	181
शिरस्तस्य स्फुटेच्छीघ्रं	75	सत्त्ववज्रीन् दृढीकृत्य	174
शीर्षे स्थाप्याभिषिच्यतां	178	सत्त्वसंभव तत्त्वार्थ	210
शुद्धसर्वार्थ शुद्धार्थ	139	सत्त्वाधिष्ठानयोगेन	169, 188
शुद्धात्मनां तु समयं	182	सत्त्वानामुत्तमः सत्त्वो	205
शुद्धे शुद्धमिति ज्ञेयं	169	सत्त्वार्थं च प्रकुर्वन् वै	177
शुध्य शुध्य इति प्रोच्य	130, 191	सत्त्वाशय महायान	109
'शुभ-सिद्धम्' इति प्रोक्ते	29	सत्त्वोत्तम सुसत्त्वज्ञ	109
श्री श्री श्री श्री-ति सन्धाय	131	सत्त्वो हि सर्वात्मभावः	197
'श्रोत्रसौख्या' सुखं दद्यात्	29	सत्यानुपरिवर्तिन्या	171, 185
श्वासहंकारयोगेन	80	सद्धर्मचक्रपूजया	47
श्वेतां रक्तां सितां पीतां	194	सद्धर्मचक्रमुद्रायां	30
स एव ज्ञानयोगेन	205	सद्धर्मे शपथङ्कृत्वा	171
स एव भगवान् सत्त्वो	188	सन्धायाङ्गुष्ठयुगलं	60, 70
स एव भगवान् सर्व	188	समन्तभद्र चर्याग्रथ	56
स एव भगवां सत्त्वः	205	समन्तभद्र वज्राद्य	18
स एवाङ्गुशयोगेन	146	समन्तभद्रः कामोऽहं	195
सकृदुच्चारयन् मन्त्रं	207	समन्तभद्रः क्रोधोऽहं	195
सकृदुच्चार्य विद्यां तु	207	समन्तभद्रः सर्वात्मा	188
सकृद्भारं सुभक्तिस्थः	214	समन्तभद्रः स्वमोघः	3
सगर्वमुखदंष्ट्राग्रा	95	समन्तभद्रो रागोऽहं	195
सगर्वं वज्रमुल्लास्य	25	समन्तभद्रो राजाहं	195
सगर्वोत्कर्षणं द्वाभ्या	30	सममध्याग्रयोत्थचक्रा	69
स तु सन्धाय वाचा वै	146	सममध्योत्तमाङ्गा च	38

समयक्रोधाङ्गुली मूर्ध्नि	98	समानाम कनिष्ठा तु	152
समयग्राहिका मुद्रा	27	समानामान्त्यरत्ना च	38
समयव्यतिक्रमातिक्षप्रं	60	समापत्त्या तु सत्कर्म	155
समयस्त्वमिति प्रोक्ते	26, 29, 172	समापत्त्या तु सद्धर्म	155
समयस्त्वमिति प्रोक्त्वा	181	समापन्नं महासत्त्वं	112
समयाग्नीन् समाधाय	130	समारभ्य चतुःपार्श्वं	174
समयाग्रचस्तथैवेह	85	समालेख्या यथावत्तु	113
समयाग्न्या मणिं बध्वा	151	समाविष्टः पतेद्यत्र	23
समयाग्रये द्विधीकृत्य	104	समिद्धिरपि कुपितो	83
समयाग्रयेश्चतस्रो हि	20	समिद्धिरमलैः प्रज्वा	84
समयाङ्कुशमुद्वेयं	70	समिद्धिर्मधुरैरग्निं	83
समया वज्रबन्धेन	76	समिद्धिर्मधुरैश्चापि	83
समये शपथा कार्या	171	समिद्धिस्तादृशैरेव	84
समाग्रया पृष्ठसंकोचा	145	समिद्धिस्तित्तवीर्यस्तु	84
समाग्रया पद्मनेत्रा तु	123	समिद्धिस्तैस्तु संक्रुद्धः	84
समाग्रया मुखतोद्धान्ता	76	समिद्धिः कडकैः पूर्वं	83
समाङ्गुष्ठकृता पद्मे	116	समुत्क्षिपेत् क्षणादूर्ध्वं	71
समाङ्गुष्ठनिपोडा च	28	समोत्थमध्यपद्मा तु	69
समाञ्जलिं तथोक्तानां	116	समोत्थित्वा ससारिता	89
समाञ्जलिं दृढीकृत्य	116	सर्वकर्मकरो भार्या	185
समाञ्जलिं समाधाय	116	सर्वकर्माणि कुर्वन् वै	105
समाधानात् समाधिस्तु	188	सर्वकायपरिष्वङ्ग	48
समाधानाद् वज्रसमो	188	सर्वकाय महाकाय	210
समाधिकर्म बुद्धानां	192	सर्वकायं परिष्वज्य	185
समाधिकायो भूत्वा तु	207	सर्वकाये दृढो भूत्वा	185
समाधिज्ञानसमया	81	'सर्व-कारि' इति प्रोक्ते	29
समाधिज्ञान सर्वस्व	110	सर्वकार्याणि कर्मय	192
समाधिज्ञानसंभूतं	188	सर्वकार्याणि कुर्वन् वै	182
समाधितो निषण्णास्तु	42	सर्वकृद्भ्रजहंकारा	95
समाधिपद्मां सन्धाय	117	सर्वचित्त महाचित्त	210
समाधिमुद्रां बध्वा वै	143	सर्वज्ञ सर्वकृत्सर्वं	55
समाधिमुद्रां सन्धाय	121, 144, 181	सर्वज्ञानमयी सिद्धि	173
समाधियोगा चोत्सङ्गे	122	सर्वतथागतगुह्यं	209
समाधिर्वज्रधर्मेण	175	सर्वतथागतं गुह्यं	51, 88, 105, 135, 162,
समाधिसमयाग्रचस्तु	44	180, 189, 198, 214	
समाधिसाधनो हृत्स्थः	206	सर्वतथागतं तत्त्व	191

सर्वतथागतानां तु	11	सर्वलोकं वशं कुर्याद्	133
सर्वतुष्टिकरं वज्र	7	सर्वलोकेषु चैवाग्रथाः	172
सर्वदानं महामैत्री	210	सर्ववज्रकुलानां तु	94, 98
सर्वदुःखहरो भूयाद्	27	सर्ववज्रमयं वज्र	30
सर्वधातुरजःसंख्याः	205	सर्ववज्र महावज्र	211
सर्वपापविशुद्धात्मा	192	सर्ववज्रसमाधिन्तु	24
सर्वपारमिताज्ञान	55	सर्ववज्रं तु विश्वत्वाद्	188
सर्वपारमिताप्राप्त	210	सर्ववाचं सुमहावाच	210
सर्वपूजाग्र्यदेवीनां	117	सर्ववित्सर्वसिद्धिस्तु	95
सर्वपूजाभिः संबुद्धान्	47	सर्वविद्धृदयस्यास्य	94
सर्वपूजामयी सिद्धि	173	सर्वविद्योत्तमानां तु	70
सर्वपूजां प्रकुर्वाणः	205	सर्वव्यापि भवाग्रयाग्र्य	211
सर्वप्रवेशको भूयाद्	27	सर्वशुद्ध इति प्रोक्ते	172
सर्वबुद्धप्रपूजायाः	30	सर्वशुद्ध समाधिन्तु	24
सर्वबुद्धमहाचक्रं	19	सर्वसत्त्वकरं विश्व	192
सर्वबुद्धमहापुण्य	47	सर्वसत्त्वपिता चैव	186
सर्वबुद्धमहोपाय	214	सर्वसत्त्वमनोव्यापी	186
सर्वबुद्धसमाधिषु	24	सर्वसत्त्वमहोपाय	210
सर्वबुद्धात्मको भूतः	4	सर्वसत्त्वसमाधिस्थः	190
सर्वबुद्धाभिषेकं तु	140	सर्वसत्त्वहितार्थाय	105, 199, 208,
सर्वबुद्धाभिषेकाग्र्य	140	211, 212	
सर्वबुद्धाभिषेकाणि	197	सर्वसत्त्वानुरागश्च	182
सर्वबुद्धाभिषेकार्थं	178	सर्वसत्त्वापरित्यागो	179
सर्वबुद्धाभिषेकोऽहं	166	सर्वसत्त्वार्थकायार्थ	56
सर्वमण्डलकोणेषु	63, 111, 140	सर्वसत्त्वार्थतत्त्वार्थ	139
सर्वमण्डलधर्माग्र्य	214	सर्वसत्त्वार्थतो योग	178
सर्वमण्डलमध्येषु	35	सर्वसत्त्वार्थदानं च	192
सर्वमण्डलयोगं तु	184	सर्वसत्त्वार्थयुक्तस्तु	42
सर्वमण्डलराजाग्र्य	55	सर्वसमयमुद्रास्तु	27
सर्वमण्डलसंपूर्णाः	21	सर्वसिद्धिकरा शुद्धा	85
सर्वमुद्राप्रसिद्धस्तु	27	'सर्वसिद्धिर्' इति प्रोक्ते	29
सर्वमुद्रास्तु सर्वेषां	50	सर्वस्य सर्वशुद्धित्वात्	165
सर्वरत्न महाशोभ	213	सर्वं कुशलसंभार	47
सर्वरत्न सुसर्वाग्र्य	139	सर्वं चैतद् दृढीकुर्यात्	42
सर्वरत्नानि संगृह्य	121	सर्वं वापि हि नि शेषं	79
सर्वलोकं निरीक्षन् वै	169	सर्वं वै बुद्धवचनं	31

सर्वाकारवरोपेत	190	सहाय परदारा	105
सर्वाकारवरोपेतं	37, 43, 80, 190	संकोचात्पुरतः सन्धेत्	117
सर्वाकारवरोपेतां	193	संगृह्याद्भुष्टयोः सम्यग्	147
सर्वाकाशरजोविश्वैः	157	संगृह्यावेशनादीनि	133
सर्वाकाशसमाधिस्तु	175	संधयेन्मध्यमाभ्यां तु	122
सर्वाक्षरमयं ज्ञानं	191	संपूज्य विधिवत्सर्वे	146
सर्वाग्रमणिपद्मा तु	146	संभारपरिपूर्णस्तु	205
सर्वाग्रय समताज्ञानं	56	संभारपूजामुद्राणां	205
सर्वाङ्गतः परिष्वज्य	68	संभूता संभविष्यन्ति	214
सर्वाङ्गुल्य दृढीकृत्य	123	संभूताः संभविष्यन्ति	56
सर्वाङ्गुल्युपस्तोभा तु	146	संलपन्महता वाचा	67
सर्वात्मकं मुने शुद्ध	210	संलिखेत यथावत्तु	149
सर्वाभयप्रदानं च	178	संलिखेद्विधिवत्प्राज्ञो	64
सर्वाभिप्रायसंप्राप्ति	140	संलिख्य तु भगाकारं	196
सर्वाभिप्रायसिद्धिनां	184	संवसन् वज्रहंकारः	88
सर्वाभिषेकगालां तु	152	संसारो निवृत्तिः शश्वत्	3
सर्वार्थकर्षणीमुद्रा	146	संसिद्धो भवते शीघ्र	126
सर्वार्थं सर्वतत्त्वार्थ	55	सा एव चक्रयोगा तु	152
सर्वार्थसिद्धिकराकारं	190	सा एव तर्जनी वज्रा	152
सर्वार्थसिद्धिमाला तु	146	सा एव तु समाग्रया वै	28
सर्वार्थसिद्धिमुद्रां तु	146	सा एव तु समानाम	28
सर्वार्थसिद्धियोगेन	184, 187	सा एव तु समीकृत्वा	123
सर्वार्थसिद्धिरूपं तु	191	सा एव मणिमध्या तु	116
सर्वार्थसिद्धिरूपेण	195	सा एव मध्यमानाम	28, 146
सर्वार्थसिद्धिसन्मुद्रां	171	सा एव मध्यवज्रा तु	38
सर्वार्थसिद्धिः सर्वात्मा	192	सा एव मुष्टियोगेन	124
सर्वार्थोत्तम सिध्यति	145	सा एव वज्रकोशा तु	28
सर्वाशिनां दरिद्राणां	192	सा एव वलितां कृत्वा	146
सर्वासामेव चान्यासां	124	सा एव सर्वसंकोचा	123
सर्वासां चैव विद्यानां	104	सा एव सर्वसिद्धयर्था	147
सर्वे चैव समापन्ना	100	सा एव साधुकारा तु	146
सर्वेषामेव धर्माणां	47	सा एव सूर्यावर्ता तु	152
स (व)ज्जरत्नां समाधाय	174	सा एव हाससंस्था तु	146
सवज्र वज्रहंकार	88	सा एव हृदयेऽङ्गुष्ठ	146
सव्यापसव्यवर्तिभ्यो	194	सा एव हृदये चैव	123
सव्यापसव्यविकचा	30	सा एव हृदि सूर्या तु	123

सा एवाङ्गुष्ठज्येष्ठाभ्यां	152	सिद्धिर्वज्रकुलस्याग्रा	169
सा एवाङ्गुष्ठदंष्ट्रा तु	123	सिद्धयते वज्रसत्त्वस्तु	26
सा एवाङ्गुष्ठपर्यङ्का	116	सिध्यते जापमात्रेण	32
सा एवाङ्गुष्ठमुक्ता तु	122	सिध्यते मणिकुलं सर्वं	176
सा एवाङ्गुष्ठवज्रा तु	122	सिध्यते सर्वजापानि	208
सा एवाङ्गुष्ठवज्रेण	145	सिध्य सिध्य इति प्रोच्य	191
सा एवाङ्गुष्ठसन्धान	146	सिध्य सिध्य महासत्त्व	184
सा एवाञ्जली	146	सिध्य सिध्याद्य समये	185
सा एवान्त्यप्रदाना तु	152	सिः सिः सिः सी-ति सन्धाय	131
सा एवान्त्यादिदाना तु	146	सुख सुख इति प्रोक्ते	132
साधकेषु दृढं वक्ता	38	सुखाग्रयानादिनिधन	213
साधयन् विधिवच्छीघ्र	120	सुखेन लभ्यते बोधि	181
साधयंस्तु महामुद्रां	165	'सुतेजाग्रि' महातेजः	29
साधयेज्जन्मनीहैव	51	सुपरिस्फुटया वाचा	208
साधयेत् तु भगे विध्वा	88	सुप्रवर्तन वज्रोत्थ	19
साधयेत् महासत्त्वो	21	सुप्रसारितवामाग्रया	76
साधयेत्सर्वकल्पान्तु	208	सुप्रसारितसर्वाग्रा	38
साधयेत्सर्वमुद्रास्तु	173	सुबन्धितसमाङ्गुष्ठय	62
साधयेत्सुसंक्रुद्धः	207	सुभाषितमिदं सूत्रं	51, 88, 105, 135,
साधयेद्वज्रजापेन	26		162, 180, 189, 198, 209,
साधयेद् वज्रसत्त्वं तु	178		214.
साधुकारप्रदात्री तु	123	'सुमहत्त्वम्' इति प्रोक्ते	29
साधुकाराग्रया रत्ना च	38	सुरतश्रमखिलस्तु	186
साधुकारा तथाग्रयाभ्यां	76	सुरतस्त्वमिति प्रोक्ते	172
साधुकारां प्रददाति	116	सुरते समयस्त्वं होः	184
साधु ते वज्रधर्माय	162	सुवर्णतोलकं गृह्य	121
साधु ते वज्रसत्त्वाय	51, 88, 105, 135,	सुविघ्ना विघ्नकर्त्री तु	95
	162, 180, 189, 198, 209,	सुसन्धितसमाग्रयन्तु	71
	214.	सुसन्धितसमाङ्गुष्ठ	71
'साधु साधु' इति वै प्रोक्त्वा	29	सूक्ष्मतालप्रयोगेण	25
साधयन् सिध्यते शोध्रं	172	सूक्ष्ममक्षरपङ्क्तिर्वा	169
साध्यमानस्तु शुद्धया वै	51	सूक्ष्मवज्रप्रयोगेण	43, 50, 80, 182, 192,
सिद्धविद्यो भवेत्क्षिप्रं	68		193, 197.
सिद्धस्तु धर्मवज्रया वै	26	सूक्ष्मवज्रविधिं योज्य	43, 44, 50, 79, 81
सिद्धानां च महत्कर्म	26	सूक्ष्मवज्रविधिं शश्वत्	193
सिद्धिकामस्त्वाशु ब्रूयात्	184	सूक्ष्मवज्रसमाधिस्थः	182

सूक्ष्मवज्रमुखस्पर्श	42	स्यामहं सर्वसत्त्वानां	166
सूक्ष्मवज्रमुखस्पर्शाद्	42	स्वकं तु कुलमुत्पाद्य	110
सूक्ष्मवज्रं दृढीकृत्य	79	स्वचित्तप्रतिवेधादि	188
सूक्ष्मवज्रं समापद्य	80	स्वचित्तं वज्ररत्नैस्तु	63
सूक्ष्मवेधितया बाणं	188	स्वदारं परदारं वा	181
सूक्ष्मावेशविधेयोगात्	25	स्वभावशुद्धः संराग	166
सूत्रयन्मण्डलं पूर्वं	71	स्वभावशुद्धिज्ञानेन	167
सूत्रयेन्मण्डलस्तत्र	63	स्वभावशुद्धिमागम्य	192
सूत्रं तु धारयेत्पश्चात्	71	स्वभावशुद्धिं धर्माणां	182
सूत्रेण सूत्रयेत् प्राज्ञे	20	स्वभावशुद्ध्या वाचा वै	165
सूर्यमण्डलसंदर्श	76	स्वमात्मानन्ततः सिद्धो	115
सैव पद्मकुलं शुद्धं	188	स्वमुखे चैव प्रक्षिप्य	151
सौवर्णमन्यरत्नं वा	151	स्वमुखेनादृहासेन	117
सौवर्णराजते वापि	92	स्वमुद्रया हृदिस्थया	28
सौवर्णं वाद्य रौप्यं	151	स्वमुद्रापरिवारं तु	141
सौवर्णे राजते वापि	63	स्वमुद्राप्रतिमुद्राभि	104
स्कन्धयोर्हृदि पाश्चात्	76	स्वमुद्रासत्त्वमात्मानं	169
स्तब्धलिङ्गः स्वयं भूत्वा	50	स्वयं कार्यं यथा वेत्ति	169
स्त्रियं परिष्वज्य पूजायां	187	स्वयं बध्वा तु सिध्यन्ते	38, 172
स्त्रिया काये स्फरेत्सम्यग्	183	स्वयं बध्वा दृढं यान्ति	172
स्त्रियो हि रागो जगद्वशंकरः	100	स्वयं बन्धेद् बन्धयेद्वापि	172
स्त्रियो ह्यनुत्तरं रत्न	186	स्वयं लिख्य चतुर्मुद्रा	86
स्त्रीकायं प्रविशन्त्योन्य	183	स्वयं सरस्वती देवो	113
स्त्रीप्रसङ्गात् रत्नानां	186	स्वरेऽतो बिन्दुभिर्बुद्ध्यां	194
स्त्रीभिः परिवृतो भूत्वा	186	स्ववक्त्रपरवक्त्रं तु	204
स्त्रीसङ्गाद्यास्तु संयोगा	172	स्वस्थाने तत्प्रतिष्ठाप्य	150
स्थापितं ज्वालते तत्र	85	स्वाङ्गुष्ठपृष्ठनिहिते	117
स्थाप्य भूयो ललाटं तु	151	स्वाधिष्ठानादिसंयुक्तो	176
स्थाप्याभिषेकस्थानेषु	150	स्वेन्द्रियं सर्वबुद्धानां	181
स्फुरयेत् तन्निमित्तन्तु	42	हत्वा विरागं रागेण	7
स्फुरेत् क्रोधवान् यावत्	79	हयग्रीवा समाकर्षणा	116
स्फुरेद्विधिवद्योगात्	166	हरंस्तु सर्वचित्तानि	150
स्फुटेद्यत्र तु सा मुद्रा	145	हस्तौ बन्धे तु समया	143
स्फुरन्तो रश्मिमण्डानि	170	'ह ह हूं हे'-ति प्रोक्ते	29
स्फोटयेत् तन्तु सुदृढं	121	हं हं हं हं इति प्रोक्ते	37
स्फोटयेद्यस्य संक्रुद्धः	122	हासवन्न महाधर्म	55

हासस्थानस्थिता चैव	28	हृदि चित्तास्तु संलेख्या	154
हिरण्यं तु मुखे विधवा	121	हृदिस्था च चतुर्थी तु	44
ही ही ही ही-ति सन्धाय	131	हृदिस्था वलिता पार्श्वे	76
हुंकारसमयां बध्वा	186	हृद्यङ्गुष्ठमुखानां तु	94
हुंकारं यः प्रयुञ्जीत	68	हृद्यूणकिण्ठमूर्धस्था	174
हुंकारं योजयेद्यस्य	79	हृद्यूणायां गले मूर्ध्नि	173
हुंकारेणैव सर्वेषां	67	हृद्यूणायां तथा कण्ठे	174
हुंकारो बुद्धवज्रिभ्यां	69	हृद्वज्रं बोधिसत्त्वं तु	43
हुं हुं हुं हुमिति प्रोच्य	191	हन्मुद्रामन्त्रविद्याना	175
हुं हुं हुं हुं समाधाय	37	हन्मुद्रामन्त्रविद्यानां	32
हुंकारैस्तु विशुद्धचर्थं	182	हन्मुद्रामन्त्रविद्यासु	175
हृत्पार्श्वपृष्ठतो योगा	48	हन्मुद्रामन्त्रविद्यास्तु	175
हृदयं जप्य विज्ञेय	207	हेतुक्रोधा हरेद् दुःखान्	69
हृदयं सर्वबुद्धाना	67	'हेस्फोट व' महोबन्धा	30
हृदयाकर्षणाद्याति	81	हे हे हे हे-ति सन्धाय	131
हृदयाच्च समुद्धान्ता	76	होममाम्लफलैः पुष्पैः	84
हृदयादिस्थानयोगेन	48	होः होः होः होः इति प्रोक्ते	37
हृदये तु समाङ्गुष्ठा	28	ही ही ही ही-ति वर्तेत	131
हृदये मणिसूर्या तु	146	हीःकारो वज्रसेनस्य	69
हृदये सूर्यसंदर्शा	76		

—०—

दुर्लभ ग्रन्थों की आधार सामग्री

—डॉ० ठाकुरसेन नेगी—

[इस शीर्षक के अन्तर्गत 'धीः' के प्रथम आठ अंकों में लगभग 271 महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित तन्त्र-ग्रन्थों की आधार सामग्री की सूचना दी जा चुकी थी, जो अब दुर्लभ ग्रन्थों की आधार सामग्री (प्रथम भाग) शीर्षक से ग्रन्थ रूप में प्रकाशित हो चुकी है। 'धीः' के नवें अंक में इस शीर्षक से ही अन्य 85 महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थों की आधार सामग्री की सूचना दी गई थी। संप्रति एशिया, यूरोप एवं अमेरिका के विभिन्न सुदूरवर्ती पुस्तक संग्रहों में संरक्षित लगभग 320 अन्य महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित बौद्ध स्तोत्र-ग्रन्थों की आधार सामग्री प्रस्तुत है, जो 2-3 अंकों में पूरी होगी।]

Title	Author	Institution	Ms. No.
अचिन्त्यस्तव सटीक Acintyastava Saṭika No. 1128 (ka. 76b ⁷ -79a ²) Bsam-gyis-mi-khyag-par-bstod-pa A. klu-Sgrub T. Tilaka, Pa-tshab ñi-ma-grags.	नागार्जुन Nāgārjuna	BAK SMTUL	Reel No. E 370/21 340-I-C
अम्बुधारास्तव Ambudhārāstava		BAK	4/1033
अरुणवरुणस्तोत्र Aruṇavaruṇastotra		MCBMBLJ	CH 122-G
अष्टमङ्गलगाथास्तोत्र Aṣṭamaṅgala Gāthā Stotra		" "	CH 214-B DH 207
अष्टमङ्गलस्तव Aṣṭamaṅgalastava		BAK "	1/1696 4/2089
अष्टमङ्गलस्तवस्तोत्र Aṣṭamaṅgalastava Stotra		MCBMBLJ	CH 199
अष्टमहास्थानचैत्यवन्दनास्तोत्र Aṣṭamahāsthānacaityavandanāstotra No. 1168 [ka. 240b ⁵ -241a ⁵] Gnas Chen-Po brgyad-kyi mchod- rten-la Phyag-ñtshal-bahi-bstod-pa. Taisho No. 1684, Nj, No. 1071. A. Śrīharṣadeva. T. Śrī Jñānamitra, Yon-tan dpal.		IASWB NEPAL-II	MBB-II-135 P. 237

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	15	Comp.	
Paper		(17a ⁴ -33a ²)		with the Akāri-ṭikā
NP	N	9-10		M. Film CIHTS
"	"	34		
"	"	Folding Book		
"	"	"		
"	"	"	Comp.	
"	"	3 (37-39)		M. Film CIHTS
"	"	4 (1b-4a)		
"	"	23	"	M. Fische CIHTS
"	"	13		

Title	Author	Institution	Ms. No.
अष्टमहाविद्यास्तोत्र Aṣṭamahāvidyāstotra		RAK	1/1697 $\frac{2}{14}$
अष्टमातृकास्तुति Aṣṭamātrkāstuti		"	4/346
अष्टमातृकास्तोत्र Aṣṭamātrkāstotra		"	Reel No. H 381/11 3/360
		"	"
		"	3/589
अष्टमातृकानवग्रहगणेशमहाकालमहा- भैरवीस्तोत्र Aṣṭamātrkāṇava- grahagaṇeśamahākālamahā- bhairavīstotra		SMTUL	386-11
अष्टलोकपालस्तोत्र Aṣṭalokapālastotra		RAK	3/360 3/589
		"	
अष्टविधिसत्त्वनामस्तोत्र Aṣṭavidhisattvanāmastotra		"	Reel No. E 126/5
अष्टाश्मशानस्तोत्र Aṣṭaśmaśānastotra		"	" " E 365/8

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
PL	Guptākṣara	1	Comp.	
NP	N	66	"	
"	Dev.	—	Incomp.	
"	"	(136a-136b)	Comp.	M. Film CIHTS
"	"	(143b-144a)	"	" "
"	"	257-258	"	" "
IP	"	(35a ¹ -40b ¹)		
NP	"	142b-143a		M. Film CIHTS
"	N	257a-257b		" "
"	"	4	Comp.	
"	Dev.	3	"	

Title	Author	Institution	Ms. No.
अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता एकविंशतिस्तोत्र Aṣṭasāhasrikāprajñāpāramitā Ekaviṃśatistotra		MCBMBLJ	A 180
आदिद्वादशकस्तोत्र Ādīdvādaśakastotra		BAK	3/360
आर्यतारा अष्टोत्तरशतनामस्तोत्र Āryatārā Aṣṭottaraśatanāmastotra		"	Reel No. H 37/8
		"	4/1616
आर्यतारा एकविंशतिस्तोत्र Āryatārā Ekaviṃśatistotra		"	5/128
		"	5/128
		"	5/128
		"	5/128
		"	Reel No. E 193/16
	MCBMBLJ		CH 204
	"		CH 495-A
	"		KA 16-S
	"		DH 136
आर्यतारा नमस्कारैकविंशतिस्तोत्र Āryatārānamaskāraikaviṃśatistotra		BAK	5/131
	MCBMBLJ		CA 11-8
	"		CH 136
	"		CH 295
	"		CA 74-12

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	3 (1b-3b)		
"	"	2(10b-11b)		M. Film CIHTS
"	"	16	Comp.	
"	Rañjanā	6	"	
"	N	Folding Book	"	
"	"	24	"	
"	"	37	"	
"	"	Folding Book	"	
"	"	9	"	
"	"	27		
"	"	17		
"	"	7 (21b-27b)		
"	"	5 (9a-13b)		
"	"	9	Comp.	
"	"	3 (1b-3b)	"	NS 906
"	"	3 (1b-3b)	"	
"	"	4 (1a-5a)	Incomp.	Missing F. 2.
"	"	4 (1b-4b)		

Title	Author	Institution	Ms. No.
आर्यतारास्तोत्र Āryatārāstotra		BAK	3/360
No. 1693 (Śa. 49b ⁶ . 51a ⁵)		"	3/360
Hphags-ma sgrol-ma-la bstod-pa		"	5/118
A. Nima-sbas-pa.		"	Reel No. E 377/11
		"	" E 127/29
आर्यतारा बौद्धस्तोत्राणि Āryatārā Bauddha Stotrāṇi		"	5
आर्यपद्मपाणिशेखरस्तोत्र Āryapadmapāṇilokeśvarastotra		"	3/589
आर्यस्तव Āryastava		"	Reel No. I. 45/1 ²
आर्यावलोकितेश्वर-अनन्तनागराजस्तवस्तोत्र Āryāvalokiteśvara Anantanāgarāja- stavastotra		MOBMBLJ	CH 130
		"	CH 214-0
		"	CH 404
		SMTUL	164-13
		"	258-12
		"	276-16
		CAMBRIDGE	1332
आर्यावलोकितेश्वरकरुणास्तवस्तोत्र Āryāvalokiteśvarakarūṇāstava- stotra	वन्धवाचार्य Vandhavācārya	SMTUL	164-4
		"	276-24
		CAMBRIDGE	1333
		"	1379
		MOBMBLJ	CH 20
		"	CH 26-B
		"	CH 100-A
		"	CH 229
		BAK	4/1033
		"	4/2089

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	42b		M. Film CIHTS
"	"	(42b-43a)		" "
"	N	6	Comp.	
"	Dev.	20	"	
"	N	10	"	
"	"	24	Comp.	
"	"	(255a)		M. Film CIHTS
"	Dev.	4	Incomp.	
"	N	40		
"	"	Folding Book		NS. 962
"	"	30		
Paper	"	(19, 9-17)		
"	"	(48, 3-50, 3)		
"	"	(29, 5-31, 2)		
"	"	Folding Book		
Paper	"	(7, 10-9, 16)		
"	"	(78, 4-85, 1)		
"	"	(48a-48b)		A. D. 1797
"	"	(25 stanzas)		
"	"	ending		
NP	"	28	Incomp.	With Newāri tran.
"	"	Folding Book		NS. 823
"	"	34(1a-34b)		
"	"	82		
"	"	3 (31-33)		M. Film CIHTS
"	"	5 (92-96)		" "

Title	Author	Institution	Ms. No.
आर्यावलोकितेश्वर-त्रिगुणात्मकस्तोत्र Āryāvalokiteśvaratriguṇātmaka- stotra.	जयप्रतापमल्ल Jayapratāpa- malla	MCBMBLJ ,, BAK	CH 214-J DH 224 4/1033
आर्यावलोकितेश्वरमणिकमालास्तोत्र Āryāvalokiteśvaramaṇikamālā- stotra		,, ,,	4/1033 ,,
आर्यावलोकितेश्वर रक्षकस्तव Āryāvalokiteśvararakṣakastava		MCBMBLJ ,,	CH 226-B
आर्यावलोकितेश्वररञ्जकास्तव Āryāvalokiteśvararañjakāstava		SMTUL	164-18
आर्यावलोकितेश्वररत्नमालास्तवस्तोत्र Āryāvalokiteśvararatnamālāstava stotra		MCBMBLJ ,, SMTUL ,, BAK ,,	CH 183-C CH 406 164-3 276-41 4/1033 4/2089
आर्यावलोकितेश्वररूपस्तवस्तोत्र Āryāvalokiteśvararūpastavastotra		MCBMBLJ SMTUL ,, CAMBRIDGE ,, BAK	CH 100-B 164-5 276-23 1322 1614 4/2089

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	Folding Book		NS 962
"	"	98		
"	"	4 (44-47)		M. Film CIHTS
"	"	(12-14)		" "
"	"	(55-57)		" "
"	"	(69)		42 other stotras,
"	"	Folding Book		
Paper	"	(22, 15-23, 15)		
NP	"	Folding Book		
"	"	12		
"	"	(5, 4-7, 10)		
"	"	(129, 2-135, 5)		
"	"	4 (35-38)	Incomp.	M. Film CIHTS
"	"	5 (118-122)		" "
"	"	34		With Newari translation. NS. 946
Paper	"	(9, 16-11, 14)		
"	"	(73, 3-78, 4)		
"	"	Folding Book		
"	"	(6b)		
NP	"	4 (89-92)		M. Film CIHTS

Title	Author	Institution	Ms. No.
आर्यावलोकितेश्वरवन्दनास्तव Āryāvalokiteśvaravandanāstava		SMTUL BAK	164-16 4/1033
आर्यावलोकितेश्वरवन्दनास्तोत्र Āryāvalokiteśvaravandanāstotra		MCBMBLJ BAK	CH 214-Q 4/2089
आर्यावलोकितेश्वरवेदनास्तोत्र Āryāvalokiteśvaravedanāstotra		MCBMBLJ	CH 214-L
आर्यावलोकितेश्वरसप्ताक्षरस्तोत्र Āryāvalokiteśvarasaptākṣarastotra		SMTUL	164-29
आर्यावलोकितेश्वरस्तवराज Āryāvalokiteśvarastavarāja		” ” BAK BAS	164-12 276-38 4/2089 30-III
आर्यावलोकितेश्वरस्तव Āryāvalokiteśvarastava		BAK ” ”	5/127 Reel No. E 374/15 4/1033
आर्यावलोकितेश्वरस्तवस्तोत्र Āryāvalokiteśvarastavastotra		SMTUL	276-4

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	(21, 4-22, 7) 2 (17-18)		M. Film CIHTS
"	"	Folding Book		NS 962
"	"	2 (123-124)		M. Film CIHTS
"	"	Folding Book		NS 962
Paper	"	(44, 4-15)		
"	"	(17, 19-19, 9)		
"	"	(115, 5-119, 5)		
NP	"	2 (111-112)		M. Film CIHTS
"	"	Folding Book	Comp.	
"	Dev.	6	"	
"	N	2 (21-22)		M. Film, CIHTS
"	"	(9, 2-11, 2)		

Title	Author	Institution	MS. No.
आर्यावलोकितेश्वरस्तोत्र Āryāvalokiteśvarastotra		RAK	1/1696
		"	1/1696
		"	Reel No. E 487/27
		"	" " E 259/21
		"	" " E 14/9
		"	4/1616
		"	3/360
यमराज Yamarāja		"	"
वलिराज Valirāja		"	"
महेश्वर Maheśvara		"	"
उमादेवी Umādevi		"	4/1033
वासुकिनाग Vāsukināga		"	4/2089
अनन्तनाग Anantanāga		"	"
		MCBMBLJ	CH 2
		"	CH 69
		"	CH 122-J
		"	CH 221
Peking Ed. No. 3546 No 2726 (Nu. 93b ⁶ -95 a ²)	चरपतिपाद Carapatipāda	SMTUL	164-2
Hphags-pa spyan-ras-gzigs dbañ-phyug-la tsarpa-ṭis bstod-pa.	"	CAMBRIDGE	1332
T. Śrīvanaratna, Chos-ḥkhor- lo-tṣā-ba.	"	"	1614
R. Rgya-mtsho,	"	MCBMBLJ	CH 183-B
	"	"	CH 18-B
	"	"	CH 26-C
	"	"	CH 266-B
	"	"	CH 236
	"	"	CH 100-C
	"	RAK	4/2089

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	Folding Book		
"	"	"		
"	"	6	Comp.	
"	"	7	"	
"	"	8	"	
PL	Raṇjanā	6	"	
NP	Dev.	(22b-23a)		M. Film CIHTS
"	"	(77a-78a)		" "
"	"	(78a-78b)		" "
"	"	1 (78b)		" "
"	"	1 (79a)		" "
"	N	4 (47-50)		" "
"	"	2 (51-52)		" "
"	"	(62a)		" "
"	"	22		
"	"	98		
"	"	Folding Book		
"	"	60		
"	"	(3, 6-5, 4)		
"	"	([8]-73, 3)		
Paper		Folding Book		
"	"	(1-3a)		
NP	"	Folding Book		
"	"	" 49		
"	"	" 44		
"	"	" 16		
"	"	" 20		
"	"	"		
"	"	4 (86-89)		

Title	Author	Institution	Ms. No.
आर्यावलोकितेश्वरस्तोत्र	चन्द्रकान्तभिक्षुणी	MCBMBLJ	183-D
Ārayāvalokiteśvarastotra	Candrakānta	SMTUL	164-14
	Bhikṣuṇī		
	”	”	276-30
	”	BAK	4/1033
वासुकिनागराज	SMTUL		276-20
Vāsukināgarāja			
	”	MCBMBLJ	CH 195-B
श्रीवीरकुश	”		KA 16-R
Śrī Virakuśa			
आर्यावलोकितेश्वरस्वरूपस्तोत्र		BAK	4/1033
Āryāvalokiteśvarasvarūpastotra			
उग्रतारास्तोत्रशतक		”	1/120
Ugratārāstotraśataka			

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	Folding Book		
Paper	"	(19, 17-20, 15)		
"	"	(95, 1-97, 1)		
NP	"	2 (5-6)		M. Film CIHTS
Paper	"	(43, 5-45, 3)		
NP	"	Folding Book		
"	"	11 (1b-11b)		
"	"	(15a)		M. Film CIHTS
"	"	8		

Title	Author	Institution	Ms. No.
उग्रतारास्तोत्र Ugratārāstotra		SMTUL	418-70
		"	420-V-5
		"	201-40
		RAK	3/360
उग्रतारास्नानस्तोत्र Ugratārāsnānastotra		"	1/129
उग्रवाराहीस्तव Ugravārāhistava		"	5/2001
उमामहेशकृतस्तव Umāmaheśakṛtastava		SMTUL	202-88
		"	418-36-a
एकजटिभट्टारिकानामस्तोत्र Ekajaṭi Bhaṭṭārikānāmastotra		CAMBRIDGE	1547
		SMTUL	258-9
		MOBMBLJ	CH 188
		"	CH 122-k
		RAK	5/1696
एकजटिस्तोत्र Ekajaṭistotra		JBORS	xxxvi-163
		SMTUL	420-ix-3
		RAK	4/1033
		"	1/799
		MOBMBLJ	CH 122-K

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
Paper	N	(144a ³ -145a ¹)		
"	"	(9a ¹ -10a ¹)		
"	"	(153a ⁶ -154a ²)		
NP	Dev.	(152b-154b)		M. Film CIHTS
"	"	Folding Book		
"	"	6		
Paper		(403b ⁴ -404a ²)		
"		(86b ⁵ -87a ⁴)		
"		18		XVIIIth Cent.
"		(41, 1-44, 4)		
NP	N	3(1b-3b)		
"	"	Folding Book		
"	"	"		
Paper	Dev.	6	Comp.	
NP	N	(3b ¹ -5b ²)		
"	"	12	"	M. Film CIHTS
"	"	18	"	
"	"	Folding Book		

Title	Author	Institution	MS. No.
एकजटाध्यानस्तोत्र Ekajaṭādhyanastotra		BAK	3/360
कथास्तोत्र Kathā Stotra		„	Reel No. H. 19/12
कमलाकरसर्वतयागतस्तवस्तोत्र Kamalākarasarvatathāgata- stavastotra		„ SMTUL „	3/360 202-99 418-83
कमलाकरसर्वतयागतस्तुति Kamalākarasarvatathāgatastuti		BAK	3/589
करवीरचण्डमहारोषणस्तोत्र Karaviracandamahāroṣaṇastotra		MCBMBLJ	DH 20
करुणामयस्तोत्र Karuṇāmayastotra		BAK „	1/1696 3/360
कल्पान्तिकस्तोत्र Kalpāntikastotra		„	4/2089

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	(151b-152b)		M. Film CIHTS
„	N	6	Comp.	
„	Dev.	(147b-150a)		M. Film CIHTS
Paper	N	(411b ¹ -413b ⁶)		
„	„	(158b ⁶ -161a ⁴)		
NP	„	(269-271)		M. Film CIHTS
„	„	4 (1b-4a)		
„	„	Folding Book		
„	Dev.	133a		M. Film CIHTS
„	N	129a	Incomp.	

Title	Author	Institution	Ms. No.
कल्याणत्रिशिकास्तोत्र Kalyāṇatrimśikāstotra		BAK	3/360
कल्याणपञ्चविंशतिस्तोत्र Kalyāṇapañcaviṃśatistotra		,,	3/360
काकपरीक्षा, श्वानपरीक्षा आदौ कर्मप्रशंसा दिव्यस्तोत्र Kākaparikṣā, Śvānaparikṣā ādaukarmaprasāmsā divyastotra		MCBMBLJ	CH 521
कायूततरस्तोत्र Kāyūttarastotra		BAK	4/2089
कालिकास्तव Kālikāstava		SMTUL	418-139
कालीस्तोत्र Kālistotra		MCBMBLJ	KA 16-C
कुलिशेश्वरस्तोत्र (वज्रडाकार्णवतन्त्र) Kuliśeśvarastotra (Vajradākārṇavatāntṛa)		BAK	4/918
		MCBMBLJ	A 162

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	(32a-33a)		M. Film CIHTS
"	"	(49b-52b)		" "
"	N	42		
"		(49b)		
Paper		(248b ⁴ -249b ⁶)		
NP		3 (1b-3a)		
"	"	21	Comp.	
"	"	11	Incomp.	(F. 1, 7, 8, 11, 13-18 & 21 only)

Title	Author	Institution	Ms. No.
कोलमुखीयमहातन्त्रोक्त वज्रवाराहीद्वादश- नामस्तोत्र चिन्ताथंदश (योगसिद्धान्ततन्त्र) Kolamukhiyamahātantrokta Vajravārāhidvādaśanāma stotra Cintārthadaśa (Yogasiddhāntatantra)		MCBMBLJ	A 91-1
गणपतिस्तोत्र Gaṇapatistotra		BAK	4/2089
		SMTUL	199-16
		CAMBRIDGE	1679-II
गणपतिहृदयस्तोत्र Gaṇapatihṛdayastotra		BAK	Reel No E 356/18
गण्डीस्तव Gaṇḍistava		„	3/589
गणेशस्तोत्र Gaṇeśastotra		„ MCBMBLJ	3/360 KA 16-M
गीतस्तोत्रादिसंग्रह Gitastotrādisaṅgraha		BAK	3/659

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	10 (1b-10b)	Comp.	
„	„	1 (32a-b)		M. Film CIHTS
Paper	„	(134a ¹ -135a ²)		
„		20		XV-XVIth Cent.
NP	Dev.	5	Comp.	
„	N	332-334		M. Film CIHTS
„	Dev.	(49b-52a)		„ „
„	N	5 (1a-5a)		
„	Dev.	65		

Title	Author	Institution	Ms. No.
गुरुरत्नत्रयस्तोत्र Gururatnatrayastotra		RAK	3/360
गुह्येश्वरीस्तोत्र Guhyeśvaristotra	मञ्जुश्री Mañjuśrī	,, MCBMBLJ ,,	3/360 CH 469 KA 16 Q
चक्रसंवरदेवहेरुकस्तुति Cakrasaṁvaradevāherukastuti.		MOBMBLJ	CA 25-3
चक्रसंवरविशुद्धिस्तोत्र Cakrasaṁvaraviśuddhistotra		RAK MCBMBLJ	Reel No.E.698/13 KA 16-W
चण्डमहारोषणस्तोत्र Caṇḍamahāroṣaṇastotra		RAK	Reel No. E. 699/1
चण्डमहारोषणक्रमोदयस्तोत्र Caṇḍamahāroṣaṇakramodayastotra		,, SMTUL	Reel No. E.274/3 420-VI-2
चतुर्भुजमहाकालस्तोत्र Caturbhujamahākālastotra		RAK	3/360

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	(4a)		M. Film CIHTS
"	"	(28b-29a)		" "
"	"	Folding Book, 10		
"	N	22 (1b-22a)		
"	"	12 (25-3 6b)		Missing F. 1-24.
"	"	3		
"	"	3 (1b-3a)		
"	"	8	Comp.	
"	"	1	"	"
Paper		(6a ⁴ -6b end)	"	"
NP	Dev.	(147a)		M. Film CIHTS

Title	Author	Institution	Ms. No.
चतुःषष्टियोगिनीस्तवः Catuṣṣaṣṭiyoginīstava		BAK	3/589
चन्द्रद्वादशनामस्तव Candradvādaśanāmastava		SMTUL	418-92
चन्द्रिकास्तव Candrikāstava		MCBMBLJ	CH 201-A
चरणदर्शनाभिलाषस्तोत्र Caraṇadarśanābhilāṣastotra		CAMBRIDGE	1614
चरपटिस्तव Carapaṭistava		BAK	Reel No. H 382/4
चिन्तामणिस्तोत्रटीका Cintāmaṇistotraṭīkā	शाक्यबुद्धि Śākyabuddhi	„ „ GOS	4/122 5/133 13277
चैत्यवन्दनास्तवस्तोत्र Caityavandanāstavastotra		MCBMBLJ	DH 217-A

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	(254a)		M. Film CIHTS
Paper	„	(164a ⁶ -b ²)		
NP	„	Folding Book		NS. 875
Paper		(8b)		
NP	„	21	Incomp.	
PL	Maithili	39	Comp.	M. Film CIHTS
NP	Dev.	15	„	„ „
Paper	„	28	„	Zerox Copy „
NP	N	15		

Title	Author	Institution	Ms. No.
चैत्यवर्णनगीतस्तोत्र Caityavarṇanagītatottra		RAK	4/1032
चैत्यवर्णनस्तव Caityavarṇanastava		SMTUL	164-9
छवस्कामिनी एकविंशतिस्तोत्र Chvaskāminī Ekaviṁśatistotra		MCBMBLJ	A 184
		"	CH 112
		"	CH 122-M
		"	CH 496
		"	DH 143
छवस्कामिनीदेवीपञ्चविंशतिस्तुतिस्तोत्र Chvaskāminīdevīpañcaviṁśati- stutistotra		"	A 182
छवस्कामिनीदेवीस्तुति Chvaskāminīdevīstuti		"	A 166
छवस्कामिनीदेवीस्तोत्र Chvaskāminīdevīstotra		MCBMBLJ	DH 253
		"	A 168
		RAK	4/1382
जगद्गुरुपञ्चाक्षरस्तोत्र Jagadgurupañcākṣara stotra		SMTUL	164-35

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	Folding Book		

Paper (15, 9-16, 8)

NP	Dev.	4 (1b-4b)	
"	N	6 (1b-6b)	
"	"	5 (148-152)	
"	"	6 (1b-6b)	Written in Gold.
"	"	7 (1b-7b)	NS. 1007

" Dev. 5 (1b-5b)

" N 6 (1b-6b)

" Dev. 52 (1b-52b)
 " 4 (1b-4b)
 " N Folding Book

Paper " (48, 14-19, 9)

Title	Author	Institution	Ms. No.
जगन्मोहनस्तोत्र Jaganmohanastotra		SMTUL	276-17
जपमालास्तोत्र Japamālāstotra		MCBMBLJ	CA 34-4
तत्त्वज्ञानसमाधिवाज्रदेवीस्तुति Tattvajñānasamādhivajradevistuti		"	CH 269-C
तथागतस्तोत्र Tathāgatastotra		BAK	3/360
		"	"
तारादेव्या नमस्कारैकविंशतिस्तोत्र Tārādevyā Namaskāraikaviṃśatistotra		SMTUL	154, 201-35
No. 1688 (Śa. 25 b ⁶ -35 a ¹)		"	155, 418-86
Bcom-lan-ḥdas-ma sgrol-ma-		"	199-24
la bstod-pa ñi-śu-rtsa-gcig-		"	420-XX-2
paḥi sgrub-thabs.		"	418-162
A. Ñi-ma Sbas-pa.		"	32
T. Śākyaśribhadra (K)		BAK	
Byams-paḥi dpal.			
Taisho No. 1108 A.			
तारानामस्तोत्र Tārānāmastotra		BAK	Reel No. E. 355/27
		"	" E. 298/32
	IASWB		MBB-II-63

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
Paper		(31, 2-33, 5)		
NP	N	1		
"	"	Folding Book		NS. 714
"	Dev.	(4b)		M. Film CIHTS
"	"	(53b-54a)		" "
Paper		(111b ⁴ -113a ⁶)		
"		(161b ² -163a ²)		
"		(176a ¹ -179a ²)		
"		(1-10)		1-10, Verse only
"		(269a ² -270a ⁷)		
"		4		
NP	N	4	Comp.	
"	"	8	"	
"		16	"	M. Film CIHTS
16				

Title	Author	Institution	Ms. No.
त्रियोगिनीनमस्कारस्तव Triyogininamaskārastava		RAK SMTUL	3/589 384-II
त्रिलोकनाथस्तोत्र Trilokanāthastotra		MCBMBLJ	CH 183-E
त्वरितास्तोत्र Tvaritāstotra		RAK	4/304
दशदिक्पालस्तोत्र Daśadikpālastotra		"	3/360
दशदिग् लोकपालस्तवस्तोत्र Daśadiglokapālastavastotra		MCBMBLJ	CH 200-D
दशबलस्तव Daśabalastava		"	CH 122-A
		RAK MCBMBLJ	4/2089 CH 183-A
दशबलस्तवस्तोत्र Daśabalastavastotra	हर्षदेव Harṣadeva	SMTUL MCBMBLJ	164 CH 214-E

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP Paper	N	(297a) (14a ² -5)		M. Film CIHTS
NP	„	Folding Book		
PL	Bhujimol	3	Comp.	
NP	Dev.	(186b-187a)		M. Film CIHTS
„	N	Folding Book		
„	„	„		
„	„	(83-86)		M. Film CIHTS
„	„	Folding Book		
Paper	„	49		Consisting of 24
NP	„	Folding Book		Stotras, NS. 962.

Title	Author	Institution	Ms. No.
दशबलस्तोत्र Daśabalastotra		BAK	5/1696
		"	Reel No. I. 14/1
		SMTUL	258-1
		"	163
दिवंग(गम्ब)रस्तोत्र Divamga(gamba)rastotra		BAK	Reel No. E. 18/4
दीपङ्करस्तोत्र Dipaṅkarastotra		"	3/360
		"	"
		"	"
		"	4/2089
देवदेवीस्तोत्र Devadevistotra		MOBMBLJ	CH 201-E
		"	CH 288-B
धर्मगण्डीस्तोत्र Dharmagaṇḍistotra		BAK	3/360
		"	3/589
		IASWR	MBB-II-6
		MOBMBLJ	CA 5-5
धर्मधातुकीलीस्तवस्तोत्र Dharmadhātukīlistavastotra		"	CH 200-A
धर्मधातुगीतस्तोत्र Dharmadhātugītastotra		"	CH 214-F
		BAK	4/1033
		"	"

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	Folding Book	Comp.	
„	Dev.	8	„	
Paper	N	28	„	(14 Other Stotra Collection)
„	„	22	„	(Consisting of 24 Stotras)
NP	„	15	„	
„	Dev.	(4b)		M. Film CIHTS
„	„	(5a)		„ „
„	„	(189b)		„ „
„	N	(106-107)		„ „
„	„	Folding Book		
„	„	„		
„	Dev.	(99b-104b)		M. Film CIHTS
„	„	(330a-332a)	Comp.	„ „
„	„	3	„	
„	„	4(2-5)	Incomp.	Missing F. 1 & 6
„	N	Folding Book		
„	„	„		NS. 962
„	„	(10-11)		M. Film CIHTS
„	„	(50-51)		„ „

Title	Author	Institution	Ms. No.
धर्मघातुवागीश्वरस्तवस्तोत्र Dharmadhātuvāgiśvarastavastotra		MCBMBLJ RAK SMTUL "	CH 214-G 3/360 258-2 194-9
धर्मघातुस्तव Dharmadhātustava		IASWR SMTUL	MBB-II-292 164-23
धर्मघातुस्तवस्तोत्र Dharmadhātustavastotra		MCBMBLJ " RAK " "	CH 214-H CH 200-A Reel No. I. 14/6 3/360 "
धर्मरत्नस्तोत्र Dharmaratnastotra		"	3/360
धर्मराजस्तुति Dharmarājastuti		SMTUL "	202-87 418-35
धर्मराजस्तोत्र Dharmarājastotra		RAK	3/360

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	Folding Book		NS. 962
"	Dev.	(140a-140b)		M. Film CIHTS
Paper	"	(13,4-18)		
"	"	(34b ¹ -37b ²)		
NP	"	9	Incomp.	M. Film CIHTS
Paper	"	(38,17-39,5)		
NP	N	Folding Book		
"	"	"		
"	"	12	Incomp.	
"	Dev.	(8b-9a)		M. Film CIHTS
"	"	(48b-49a)		" "
"	"	(3b)		M. Film CIHTS
Paper		(402b ¹ -403b ⁴)		
"		(85b ¹ -86b ⁶)		
NP	"	(136b-137a)		M. Film CIHTS

Title	Author	Institution	Ms. No.
नरकोद्धारस्तोत्र Narakoddhāraṣṭotra		BAK	4/1033
		"	4/2089
		MOBMBLJ	CH 122-H
		SMTUL	164-30
		"	258-4
		"	276-27
		CAMBRIDGE	1614
नवग्रह(देवता)स्तोत्र Navagraha (devatā) Stotra		BAK	3/360
		"	"
		"	"
नागपूजास्तोत्र Nāgapūjāstotra		"	3/589
		SMTUL	420-X-6
नागराजस्तोत्र Nāgarājastotra		BAK	3/360
नानास्तोत्र Nānāstotra		"	4/1041
नामसंगीतिस्तोत्र Nāmasaṅgītistotra		"	5/130

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	(12a)		M. Film CIHTS
"	"	(47-49)		" " "
"	"	Folding Book		
Paper	"	(44,15-45,12)		
"	"	(21,3-25,1)		
"	"	(88,3-90,5)		
"	"	(7b)		
NP	"	(144a-146a)		M. Film CIHTS
"	"	(135b-136a)		" " "
"	"	(187a-187b)		" " "
"	N	(210b)		M. Film CIHTS
Paper		(32IIb ^a -3)		D-II P. 224, Appendix A. 184
NP	Dev.	(44b-45b)		M. Film CIHTS
"	N	Folding Book	Comp.	
"	"	9	Comp.	

Title	Author	Institution	Ms. No.
नामसंगीतिस्तोत्रसंग्रह Nāmasaṅgītiśtotrasaṅgraha		RAK "	Reel No. H. 189/12 4/2089
निरञ्जनास्तोत्र Nirañjanāstotra		"	Reel No. E. 793/6
नैरात्म्यदेव्यष्टकस्तव Nairātmyadevyaṣṭakastava		SMTUL RAK "	420-IX-4 3/360 3/589
पञ्चगीतस्तोत्र Pañcagītastotra		MOBMBLI	CH 214-R
पञ्चजिनस्तोत्र Pañcajinastotra		RAK	3/360
पञ्चतथागतगीतस्तोत्र Pañcatathāgatagītastotra		SMTUL "	258-11 164-26
पञ्चतथागतज्ञानस्तुति Pañcatathāgatajñānastuti		RAK	5/125

Material	Script	Folio	Comp./Incomp	Other Information
NP	N	13	Comp.	
"	"	129	Incomp.	
"	Dev.	1	Comp.	
Paper		(5b ^a -6a ^a)		D-II, P. 244 , Appendix A 202. M. Film CIHTS
NP	"	(141b-142a)		" " "
"	N	(222a)		
"	"	Folding Book		NS. 962
"	Dev.	(140b-141a)		M. Film CIHTS
Paper		(46,3-48,2)		
"		(42,10-43,3)		
NP	N	23	Comp.	

Title	Author	Institution	Ms. No.
पञ्चतथागतस्तुतिगाथा Pañcatathāgatastutigāthā		RAK	3/360
पञ्चतथागतस्तोत्र Pañcatathāgatastotra		"	3/360
		"	4/1033
		"	4/2089
		"	4/2089
पञ्चबुद्धस्तव Pañcabuddhastava		MOBMBLJ	CH. 26 E
पञ्चबुद्धस्तुति Pañcabuddhastuti		RAK	3/360
पञ्चबुद्धस्तोत्र Pañcabuddhastotra		"	3/360
		"	4/2089
		"	4/2089
		SMTUL	164-17
		"	276-32
पञ्चभूस्तोत्र Pañcabhūstotra		RAK	3/360
पञ्चाक्षरस्तुति Pañcākṣarastuti		"	4/2089

Material	Script	Folio	Comp /Incomp.	Other Information
NP	Dev.	(189b-190a)		M. Film CIHTS
"	"	(5a)		M. Film CIHTS
"	N	(43a)		" "
"	"	(41a)	comp.	" "
"	"	(127a)	"	" "
"	"	Folding Book		NS. 823
"	Dev.	(155a-155b)		M. Film CIHTS
"	"	(188a)		" "
"	N	(63-65)		" "
"	"	(102-103)		" "
Paper	"	(22,7-15)		
"	"	(99,5-100,5)		
NP	Dev.	(43a-43b)		" "
"	N	(62-63)		" "

Title	Author	Institution	Ms. No.
पञ्चाक्षरस्तोत्र Pañcākṣarastotra		BAK SMTUL " BAS	3/589 164-15 276-11 30-IV
पञ्चार्यस्तोत्र Pañcāryastotra		SMTUL	276-7
पञ्चाशतस्तोत्र Pañcāśatastotra		IASWR SMTUL	MBB-I-67 276/2
पद्मनर्तेश्वरस्तोत्र Padmanartēśvarastotra		BAK	3/360
पद्मनृत्येश्वरस्तोत्र Padmanṛtyeśvarastotra		"	3/360
पीठस्तव Piṭhastava		BAK " " IASWR	Reel No. E. 596/8 3/360 3/589 MBB-II-130
पीठस्तवस्तोत्र Piṭhastavastotra		MCBMBLJ SMTUL " " " "	DH 258 196-13 199-23 418-140 419-III-153 476-IX

Material	Script	Folio	Comp /Incomp.	Other Information
NP	N	(251a)		M. Film CIHTS
Paper	"	(20,15-21,4)		
"	"	(18,1-19,2)		
"	"	(13,2-14,1)		
NP	"	100		
Paper		(5,2-7,1)		
NP	Dev.	(26a)		M. Film CIHTS
"	"	(146b)		" "
"	N	9	Comp.	
"	Dev.	(112a-116a)		M. Film CIHTS
"	N	(179-181)		" "
"		5		M. Fish "
"	"	6	Incomp.	Missing F. 7.
Paper	"	(29a ⁵ -35b ²)		
"	"	(168a ³ -175b ⁴)		
"	"	(249b ⁵ -253a ⁶)		
"	"	(294a ⁶ -298b ²)		D. II. P. 244. (Appendix A. 170)
"	"	—		

Title	Author	Institution	Ms. No.
पीठस्तवस्तोत्र एवं अन्य स्तोत्र Piṭhastavastotra and other stotra		MCBMBLJ	CA 36
पूजास्तोत्रसंग्रह Pūjāstotrasaṃgraha		BAK	Reel No. H 26/4
पोतलकास्तोत्र Potalakāstotra		"	4/2089
प्रज्ञापारमिता-एकविंशतिस्तोत्र Prajñāpāramitā-Ekaviṃśatistotra		" MCBMBLJ	4/1391 CH 174-1
प्रज्ञापारमितास्तुति Prajñāpāramitāstuti		BAK SMTUL CAMBRIDGE	3/360 418-50 1614
प्रज्ञापारमितास्तोत्र Prajñāpāramitāstotra No. 1127 (Ka 76a ⁴ -76b ⁷) Śes-rab-Kyi-Pha-rol-tu-Phyin- maḥi-bstod-pa. A. Klu-sgrub T. Thig-le bum-pa.		BAK " " "	3/360 " " Reel No. H. 150/13
प्रथमाक्षर-सप्त-मिश्रण-संयुक्तवद्वक्षरस्तव Prathamākṣara-sapta-miśraṇa- smyukta-Ṣaḍakṣarastava		SMTUL " "	202-86 418-31 420-V-3

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	201(1b-201a)		NS. 906
"	"	7	Incomp.	
"	"	127-128		M. Film CIHTS
"	Dev.	10	Comp.	
"	N	5(1b-5b)		
"	Dev.	(26a)		" "
Paper		(123b ¹ -124b ¹)		
"				
NP	"	(61a-61b)		" "
"	"	(76a-77a)		" "
"	"	(155a)		" "
"	"	3	Comp.	
Paper		(401b ¹ -402b ¹)		
"		(80a ⁸ -81a ⁵)		
"		(6b ¹ -7b ²)		D. II, P. 244. (Appendix A. 192)

Title	Author	Institution	Ms. No.
प्रणिधानस्तुति Pranidhānastuti		BAK	3/360
		"	3/360
प्रतिसरास्तुति Pratisarāstuti		"	3/589
प्रतिसरास्तोत्र Pratisarāstotra		"	3/360
		"	3/360
	राहुलभद्र Rāhulabhadra	"	4/1391
		SMTUL	418-116
प्रत्यङ्गिरासिद्धिस्तव Pratyāṅgirāsiddhistava		BAK	Reel No. H. 42/5
प्रत्यङ्गिरास्तोत्र Pratyāṅgirāstotra		"	3/360

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	(53a)		M. Film CIHTS
"	"	(79b)		" "
"	N	(263-265)		" "
"	Dev.	(26b)		" "
"	"	(43b-44b)		" "
PL	"	4	Comp.	" "
Paper		(182a ⁷ -b ⁴)		
NP	"	10	Comp.	
"	"	(104b-107a)		M. Film CIHTS

बौद्ध तन्त्रों में पीठोपपीठादि का विवेचन (३)

—डॉ० बनारसी लाल—

['घोः' के प्रथम तथा तृतीय अंक में इस शीर्षक से बौद्ध तन्त्रों में उल्लिखित पीठोपपीठादि का विमर्श किया गया था । उसी सन्दर्भ में प्रस्तुत अंक में हेरुक-मण्डल के प्रत्येक पीठ में स्थित वीर-वीरेश्वरियों के स्वरूप, विशेषकर मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से जो अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, उन पर प्रकाश डाला गया है । यद्यपि मण्डल के देवों के आम्नाय-परम्परा के कारण विभिन्न स्वरूप प्राप्त होते हैं, तथापि यहाँ दशबलाचार्य कृत वसन्ततिलक के आधार पर हेरुक के मण्डल में स्थित वीर-वीरेश्वरियों का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है ।]

बौद्ध तन्त्रों में पीठोपपीठादि के विवेचन के प्रसंग में हमने देखा है कि मुख्यतया चौबीस पीठ ही प्रचलित हैं । पीठों की संख्या का निर्धारण तथा उनकी स्वदेहमण्डल तथा बाह्य पीठों में स्थिति का निरूपण पूर्व सन्दर्भों में किया जा चुका है । उक्त सन्दर्भों में हमने देखा है कि जो प्रसिद्ध चौबीस पीठ हैं, उनमें खण्डकपाल आदि वीर (डाकिनी) तथा प्रचण्डा आदि वीरेश्वरियां क्रमशः स्थित हैं । इनमें पीठ एवं उपपीठ के अन्तर्गत आने वाले खेचरी; क्षेत्र, उपक्षेत्र, छन्दोह और उपच्छन्दोह में स्थित वीर-वीरेश्वरी भूचरी; तथा मेलापक, उपमेलापक, श्मशान तथा उपश्मशान में स्थित वीर-वीरेश्वरी पातालवासिनी हैं ।

खेचर्योऽष्टौ तु योगिन्यो भूचर्योऽपि तथापराः ।

याश्च पातालवासिन्यः सर्वास्तास्तासु संस्थिताः ॥ (ब० ति०, पृ० 120)

स्वदेहस्थ पीठस्थानों में ये काय, वाक् और चित्त चक्र में स्थित हैं । देहमण्डल की चारों दिशाओं में उलूकास्या, काकास्या, शूकरास्या तथा श्वानास्या स्थित हैं । कोणों में यमदाढी, यम-दूती, यममथनी तथा यमदंष्ट्रिणी स्थित हैं तथा इसके छोरों में डाकिनी, लामा, खण्डरोहा तथा रूपिणी स्थित हैं¹ ।

पीठोपपीठादि के विवेचन क्रम में इन वीर-वीरेश्वरियों के स्वरूप (आकार) पर, विशेषकर मूर्ति विज्ञान (Iconography) की दृष्टि से महत्वपूर्ण विवरण दशबलाचार्य कृत वसन्ततिलक² में प्राप्त होता है । वहाँ उपर्युक्त 36 वीर-वीरेश्वरियों तथा हेरुक का स्वरूप उपलब्ध है । उक्त सन्दर्भ के आधार पर यहाँ प्रकाश डाला जा रहा है । वसन्ततिलक टीकाकार ने हेरुक को उपर्युक्त 36 वीर-वीरेश्वरियों से अभिन्न स्वीकार किया है—

षट्त्रिंशत्संविदाऽभिन्नस्वभावकं हेरुकं प्रभुम् । (ब० ति०, पृ० 1)

1. देखिये 'घोः' अंक 3, पृ० 67.

2. वसन्ततिलक, परिशिष्ट सं० 4, पृ० 122-127.

संवरमण्डल एवं चक्रसंवर के मण्डल में प्रत्येक वीर के साथ वीरेश्वरी (योगिनी) युगनद्ध रूप में स्थित है, जिसका विवरण निष्पन्नयोगावली (पृ० 26-27) में संगृहीत संवरमण्डल में विवृत है। खण्डकपाल आदि चौबीस वीरों का स्वरूप प्रो० दुच्ची के ग्रन्थ 'The Temples of Western Tibet and their Artistic Symbolism' पृ० 38-41 तथा 'Sri Cakra-samvara Tantra'¹ भूमिका, पृ० 16-17 पर उद्धृत किया है। अतः उसका यहां उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

प्रथमतः 24 पीठों में स्थित वीरेश्वरियों के स्वरूप का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है—

1. प्रचण्डा²

पुल्लिर-मलय पीठ में स्थित प्रचण्डा का स्वरूप इस प्रकार का है—इनके मुख का वर्ण श्वेत तथा मुख का आकार किनकास्य (?) है। भैरव नगण(?) मुख षड्भुजाओं वाले हैं। प्रत्येक हस्त में कर्ति, कपाल, डमरु, खट्वांग, पाश तथा अंकुश लिये हुए हैं। द्वीपिचर्म तथा महारस धारण की हुई आलिङ्गित मुद्रा में हैं।

“पुल्लिरे तु प्रचण्डा किनकास्या श्वेतवक्त्रा भैरवनगणमुखषड्भुजा कर्तिकपालडमरुखट्वाङ्ग तथा पाशाङ्कुशमेव च। शृङ्गारद्यु(द्वी)पिचर्मवरधरा महारसधरा कामालिङ्गणतत्परा”।

(व० ति०, पृ० 122)

2. चण्डाक्षी

जालन्धर में स्थित चण्डाक्षी का स्वरूप एक मुख, दिगम्बर, तीन नेत्र तथा मेघवदन वाली है और मुण्डमाला से आवृत है। सौम्यरूप षड्भुजाओं वाली है। प्रत्येक हस्त में खट्वांग, डमरु, वज्र, घण्टा, कर्ति और कपाल धारण किये हुये हैं। हार नौ(नू)पुर से युक्त, भीषण जटाजूट, ललज्जिह्वा, भयानक रूप वाली है।

“जालन्धरे तु चडाक्षिः (क्षी)। एकानना दिगम्बरा, त्रिनेत्रा मेघवदना मुण्डमालावृता तथा। षड्भुजा सौम्यरूपा खट्वाङ्गडमरुस्तथा। वज्रघण्टाकर्तिकपालमेव च। हाराद्दहारनूपुरान्वित- (ता)भि(भी)षणजटाजूटसंयुक्ता ललज्जिह्वा भयानका” (व० ति०, पृ० 122)।

3. प्रभामती

ओडियान में प्रभामती अवस्थित हैं, जो एक मुख तथा तीन नेत्र वाली हैं। हाथों में कर्ति,

1. Sri Cakrasamvara Tantra. Ed. by Kazi Dawa Samdup.

2. संवर-मण्डल में प्रचण्डादि 24 देवियों का सामान्य स्वरूप इस प्रकार दिया है ‘त्रिनेत्रों वाली एक वदन रौरूप, मुक्तकेश तथा नग्न हैं। इनके हाथों में कर्ति तथा कपाल हैं—“प्रचण्डादि देव्या-स्त्रिनयनैकवदना रौरूपिण्यो मुक्तकेशा नग्ना द्विभुजा आलिङ्गितकरेण कपालं सव्येन दुष्टतर्जन-कर्तिकां बिभ्रत्यः” (निष्पन्नयोगावली, पृ० 27)।

कपाल, खट्वांग, डमरु, अंकुश तथा पाश धारण किये तथा मुण्डमाला से विभूषित हैं। जटाजूट से युक्त तथा हारनूपुर से अलंकृत हैं।

“ओडियाने प्रभामती एकवक्त्रा त्रिनेत्रका सव्ये कर्तिकपालं च खट्वाङ्गडमरुस्तथा। अङ्कुशं पाशहस्तं च मुण्डमालाविभूषणा। जटाजूटसमायुक्तं हारनूपुरविभूषिता॥” (व० ति०, पृ० 122)।

4. महानासा

अर्बुद में महानासा अवस्थित है, जो पिशिताशिनी रक्त मुख वाली, दिगम्बर है। वज्र, घण्टा धारिणी वीर, खट्वांग, डमरु, कर्ति तथा कपाल ली हुई है।

“अर्बुदस्तु पिशितासिन्यारक्तवक्त्रा दिगम्बरा वज्रघण्टाधरं वीरं खट्वाङ्गडमरुस्तथा कर्तिकपालशृङ्गारा क्रीडतीह यथासुखम्” (व० ति०, पृ० 122)।

5. वीरमती

गोदावरी में वीरमती स्थित है, जो एक मुख, षट् भुजाएं, पीतवर्ण तथा जटाधारी है। घण्टा, वज्र, अंकुश, पाश, खट्वांग तथा डमरु एवं षण्मुद्रा¹ धारिणी देवी आलिङ्गित मुद्रा में है।

“अनहास्तु वीरमती ख्याता एकवक्त्रा षड्भुजा पीतवर्णा जटा तथा। घण्टावज्राङ्कुशपाशा खट्वाङ्गडमरु तथा। षण्मुद्राधरा देव्यालिङ्गितस्तथा” (व० ति०, पृ० 122)।

6. खर्वरी

रामेश्वरी में स्थित खर्वरी देवी एक मुख, श्यामवदन तथा त्रिनेत्र वाली है। आलिङ्गन चुम्बन करती हुई षट् भुजाओं में खट्वांग, परशु, डमरु, पात्र तथा षण्मुद्रा धारण किये हैं।

“रामेश्वरी तु या खर्वरी देव्यालिङ्गणचुम्बका एकवक्त्रा श्यामवदना नेत्रत्रयविभूषिता। षड्भुजालिङ्गणकरा खट्वाङ्गपरशुडमरुपात्रं तथा षण्मुद्रा भवनि(नी)लसमप्रभा” (व. ति., पृ० 122)।

7. लङ्केश्वरी

देवीकोट में लङ्केश्वरी है, जो एकमुख, श्वेतवदन तथा छः भुजाओं से युक्त है। हाथों में वज्र, घण्टा, त्रिशूल, डमरु, खट्वांग तथा खप्पर हैं। नानासुखधर को अनुराग पूर्वक आलिङ्गित की हुई है।

1. षण्चमुद्रा एवं षण्मुद्रा का भिन्न-भिन्न स्थलों पर उद्धरण आया है। ये षण्मुद्राएँ हैं—

कण्ठिका रुचकं रत्नं मेखलं भस्म सूत्रकम्।

षट् वै पारमिता एता मुद्रारूपेण योजिताः॥ (साधनमाला, पृ० 489)

विस्तार के लिये देखें साधनमाला भूमिका, पृ० CXXXV-CXXXIX.

“देवीकोटे तु या देव्या लङ्केश्वरीस्तथा एकवक्त्रा श्वेतवदना भुजाषड्विभूषिता वज्रघण्टा-
त्रिशूलादि डमरुखट्वाङ्गखण्डपरस्तथा नानामुखधरालिङ्गण-अनुरागानि(ति)रागिनी”(व. ति., पृ० 123)।

8. द्रुमच्छाया

मालव में द्रुमच्छाया है, जो रक्तवर्ण, त्रिनेत्र तथा षट्भुजाओं वाली है। इनकी समालिङ्गित भुजाओं में खट्वांग, डमरु, वज्र, घण्टा, अंकुश तथा चक्र हैं। षण्मुद्राओं से विभूषित अट्टहास करती हुई महारौद्र हसित रूप में यह स्थित है।

“मालवे द्रुमच्छाया रक्तवर्णा त्रिनेत्रा षट्भुजा समालिङ्गखट्वाङ्ग डमरुस्तथा । वज्रघण्टाङ्कुश-
चक्रं षण्मुद्राविभूषिता शब्दक्रियारसानो (तो) ये महारौद्रा तु हसिता”(व. ति., पृ० 123)।

9. ऐरावती

कामरूप में ऐरावती स्थित है। यह एक मुख श्यामवदन तथा षट्भुजाओं से युक्त है। हाथों में वज्र, घण्टा, खट्वांग, डमरु, कर्ति तथा मुण्डमाला धारण की है। जटाजूट से समाक्रान्त तथा लघुरस से समन्वित है।

“कामरूपे स्तनकक्षौ ऐरावती तथा । एकवक्त्रा श्यामवदना भुजाषण्मेव च तथा । वज्र-
खट्वाङ्गडमरुघण्टाकर्तिमुण्डधरान्विता । जटाजूटसमाक्रान्तलघुरससमन्विता”(व. ति., पृ० 123)।

10. महाभैरवी

ओड़ में महाभैरवी स्थित है। यह एकमुखी, नीलांगी तथा द्वादश भुजाओं से युक्त है। इसकी भुजाओं में वज्र, घण्टा, हस्तिचर्म, कर्ति, कपाल, मुण्ड, त्रिशूल, खट्वांग, डमरु, अंकुश, पाश, चक्र, तथा असि हैं। यह नीले मुख और रक्त अङ्ग वाली है।

“ओड़े स्तनयुगले श्रीभैरवी स्मृता । एकवर्णा (वक्त्रा) नीलाङ्गी भुजाद्वादशस्तथा । वज्रघण्टा-
हस्तिचर्म कर्तिकपालमुण्डजाः । त्रिशूलखट्वाङ्गडमरु अङ्कुशपाशचक्र असि तथा नाना सुख्येति वील-
(र)स्थां रक्ताङ्गी शुभकारिता”(व. ति., पृ० 123)।

11. वायुवेगा

त्रिशकुनि में वायुवेगा है, जो श्याम आभा वाली तथा द्वादश भुजाओं वाली है। हाथों में वज्र, पाश, मुण्ड, खट्वाङ्ग, डमरु, द्वीपिचर्म, अंकुश, त्रिशूल तथा कबन्ध हैं। यह तीन मुख वाली है जिनका वर्ण रक्त, श्याम तथा कृष्ण है।

“त्रिशकुनौ वायुवेगा श्यामाभालिङ्गीतिस्तथा भुजारविकराख्याता वज्रपाशमुण्डधारिखट्वाङ्ग-
डमरुद्वीपिचर्माङ्कुश तथा । त्रिशूलकबन्धमेव च त्रिवक्त्रा रक्तश्यामकृष्णाङ्गी मुखशुडिस्तथा(?)”।

(व. ति., पृ० 123)

12. सुराभक्षी

कौशल में सुराभक्षी है, जो द्वादश भुजाओं वाली है। इसके हाथों में वज्र, घण्टा, नरचर्म, खट्वाङ्ग, डमरु, वज्र, त्रिशूल, अंकुश तथा पाश हैं। ब्रह्ममुण्डधारण की है तथा विविध भूषणों से भूषित कृष्ण वर्ण की हसित रूप में है।

“कोशले नासिकाग्रे च भुजाद्वादशान्विता वज्रघण्टानरचर्म खट्वाङ्गं डमरुकस्तथा । वज्रत्रिशूलाङ्कुशमेव च पाशब्रह्ममुण्डधराकरा विविधाभूषणा चैव कृष्णवर्णस्तु हसिताः” ।

(व. ति., पृ० 123)

13. श्यामा देवी

कलिङ्ग में श्यामा देवी है, जो द्वादश भुजाओं वाली है। वज्र, खट्वाङ्ग, उत्पल, त्रिशूल, कर्ति, कपाल, हस्तिचर्म, खट्वाङ्ग (?) डमरु, घण्टा धारण की है। पञ्चमुद्रा धारण की हुई, चुम्बित तथा आक्रान्त की है।

“वदने श्यामादेव्यालिङ्गिता भुजाद्वादशख्याता वज्रलिङ्गणा खट्वाङ्गोत्पलत्रिशूलं च कर्तिकपालमेव च । हस्तिचर्म खट्वाङ्गडमरुकस्तथा घण्टाश्याम कृष्णाद्धे चैव पञ्चमुद्रादेहा चुम्बिताक्रान्तमेव च” (व. ति., पृ० 123) ।

14. सुभद्रा

लम्पाक में सुभद्रा अवस्थित है। यह श्वेत मुख वाली तथा द्वादश भुजाओं वाली है। इसके हाथों में वज्र, घण्टा, मुण्ड, खट्वाङ्ग, अंकुश, दो हाथों से योनि को ढकी हुई, दन्तिचर्म, त्रिशूल, कर्ति, पात्र धारण किये धवल देह वाली है।

“लम्पाके सुभद्राङ्गश्वेतवक्त्रा धरास्तथा भुजाप्रभाकरालिङ्गिता वज्रघण्टा च मुण्ड-खट्वाङ्गाङ्कुशदन्तिचर्मद्विहस्ताभ्यां योनिमुद्रा तथा परा त्रिशूलं कर्तिपात्रमेव च क्रीडति शृङ्गारा धवलदेहास्तथा” (व. ति., पृ० 123) ।

15. हयकर्णा

कांची में हयकर्णा स्थित है, जो एक मुख तथा कुङ्कुमारुण वर्ण की है तथा अष्टादश भुजाओं से युक्त है। इसके दक्षिण हाथों में वज्र, पर्शु, दन्त, त्रिशूल, कर्ति, चक्र, असि, शृङ्खला तथा अंकुश हैं। वाम हाथों में घण्टा, पाश, खट्वाङ्ग, पात्र, ब्रह्ममुण्ड, उत्पल, ध्वज, छत्र तथा पर्वत हैं। यह महाप्रज्ञा द्वारा आलिङ्गित है।

“हृदये हयकर्णा एकवक्त्रा दिवाकारा वर्णकुङ्कुमारुणं भुजाष्टादशस्तथा । दक्षिणवज्रपर्शुदन्त-त्रिशूलकर्तिचक्रासिशृङ्खलाङ्कुशस्तथा वामे घण्टापाशखट्वाङ्गपात्रब्रह्ममुण्डोत्पलध्वजछत्रपर्वतस्थिता । महाप्रज्ञालिङ्गिता काद्यालिङ्गानुरागिनी(णी)” (व. ति., पृ० 123) ।

16. खगानना

हिमालय में खगानना स्थित है, जो चार मुख तथा अष्टादश भुजाओं वाली है। मुखों के वर्ण कृष्ण, श्याम, पीत तथा रक्त हैं। दक्षिण हस्तों में वज्र, विश्ववज्र, खड्ग, चक्र, अंकुश, दन्त, शर, कर्ति, दो हाथों में हस्तिचर्म, वाम हाथों में घण्टा, पात्र, अभय, डमरु, ब्रह्ममुण्ड, पाश, पर्शु, खट्वाङ्ग तथा षण्मुद्रा धारण किये भीषण स्वरूप की है।

‘हिमालये खगानना वेदवक्त्राष्टादशभुजास्तथा। मूलमुखकृष्णं श्यामपीतरक्तमेव च। दक्षिण-हस्तां वज्रविश्ववज्रखड्गचक्राङ्कुशदन्तशरकर्तिहस्तिचर्मा द्विहस्ता वामे घण्टापात्र अभयकमण्डरु ब्रह्ममुण्डपाशपर्शुखट्वाङ्गा षट्मुद्राधारारवान्वितभीषणा” (व. ति., पृ० 124)।

17. चक्रवेगिनी (वेगा)

प्रेतपुरी में चक्रवेगिनी स्थित है। यह चार मुख वाली है तथा मुखों के वर्ण कृष्ण, रक्त, श्वेत तथा श्याम हैं। दो हाथों में हस्तिचर्म तथा सर्वराजेन्द्र मुद्रा हैं, दक्षिण हाथों में वज्र, अंकुश, कर्ति, डमरु, त्रिशूल, उत्पल, शिखर तथा वाम हाथों में घण्टा, पाश, पात्र, कबन्ध, ध्वज, छत्र तथा कुलिश हैं।

“प्रेताधिस्थिता च चक्रवेगिनी। कृष्णवर्णा चतुर्वक्त्रा श्वेतश्यामरक्तमेव च। द्विहस्ता हस्तिचर्मा द्विहस्ताभ्यां सर्वराजेन्द्रमुद्रास्तथा दक्षिणवज्राङ्कुशकर्तिडमरुत्रिशूलोत्पलशिखराः। वामे घण्टापाशपात्रकबन्धध्वजच्छत्रकुलिशाः। नावोत्साहकलक्रान्ति क्रीडति शिखारुणा”।

(व. ति., पृ० 124)

18. खण्डरोहा

गृहदेवता में खण्डरोहा स्थित है। यह अष्टादश भुजाओं वाली रौद्ररूपी पाँचमुखी है। मुख नील, पीत, रक्त, कुङ्कुम तथा श्यामवर्ण के हैं। तथा षण्मुद्राओं के आभरण से उज्ज्वल हैं। दो हाथों में हस्तिचर्म तथा धेनुमुद्रा है, तथा दूसरे हाथों में वज्र, असि, कुण्ड, त्रिशूल, कर्ति, डमरु तथा वर धारण की हुई है। वाम हाथों में खट्वाङ्ग, घण्टा, पाश, पात्र, कंचु, पर्शु तथा पर्वत धारण की है। यह घन प्रीतिकर देवी शृङ्गाराभरणों से दीप्त है।

“गृहदेवती गुदस्थाने अष्टादशभुजास्तथा पञ्चवक्त्रा रौद्ररूपा नीलपीतरक्तकुङ्कुमश्यामस्तथा षण्मुद्राभरणोज्ज्वला। हस्तिचर्मा द्विहस्तां धेनुमुद्रा तथा परा वज्रासिकुण्डत्रिशूलङ्कर्तिडमरुवरधरा-स्तथा दक्षिणे वामे खट्वाङ्गघण्टापाशपात्रकञ्चु पर्शुमेव च पर्वतौ तथा घनप्रीतिकरा देवी शृङ्गारा-भरणोज्ज्वला” (व. ति., पृ० 124)।

19. सौण्डिनी (शौण्डिनी)

सौराष्ट्र में सौण्डिनी स्थित है, जो नग्न है तथा जिसके रोमकूप स्पष्ट दीख रहे हैं, छः वक्त्र वाली है, जिनके वर्ण श्याम, कृष्ण, रक्त, श्वेत, पीत तथा हरित हैं। देह में पुष्पमाला तथा

मुण्डमाला लम्बित है। दो हाथों में नरचर्म तथा योनिमुद्रा में हैं। दक्षिण हाथों में वज्र, पर्शु, डमरु, कर्ति, अंकुश, चक्र तथा दण्ड हैं। वाम हाथों में घण्टा, पाश, खट्वाङ्ग, पात्र, मुण्ड, ध्वज तथा छत्र व्याघ्रचर्म धारण किये शृङ्गारों से युक्त हसित मुख वाली है।

“सौराष्ट्रे सौण्डिनी ख्याता नग्नकूपरोमगास्तथा। षड्वक्त्रा मुण्डमालालिङ्गिस्तथा। श्याम-कृष्णरक्तश्वेतपीतमास्यमेव च। पुष्पमालाधरादेहा मुण्डमालाप्रलम्बिता। नरचर्म द्विहस्तया योनिमुद्रा-स्तथापरा। दक्षिणवज्रपर्शुडमरुर्कर्ति अङ्कुशचक्रदण्डस्तथा वामे घण्टापाशपात्रखट्वाङ्गपात्रमुण्ड-ध्वजच्छत्रमेव च व्याघ्रचर्म निवासनं शृङ्गारा हसितानना” (व. ति., पृ० 124)।

20. चक्रवर्मिणी

सुवर्णद्वीप में चक्रवर्मिणी स्थित है, जो रक्तवर्ण की तथा जटाजूट से समायुक्त है। मुण्डमाला से सुशोभित तथा हाडाभरण और उत्तम नूपुर से सुशोभित है। इसकी अष्टादश भुजाएँ हैं, जो शृङ्गाराभरणों से उज्ज्वल हैं। दक्षिण भुजाओं में वज्र, परशु, शर, त्रिशूल, तोमर, सूर्य तथा द्वीपचर्म, अक्षमाला तथा वर धारण किये हैं। वाम हाथों में घण्टा, खट्वाङ्ग, चाप, पात्र, ध्वज, अंकुश, दण्ड तथा उत्पल हैं।

“सुवर्णद्वीपे चक्रवर्तिनी (वर्मिणी) रक्तवर्णा जटाजूटा मुण्डमालाशोभिता हाडाभरणैर्नैपुरो-त्तमा। अष्टादशभुजादेवं शृङ्गाराभरणोज्ज्वलः। दक्षिणवज्रपर्शुशरत्रिशूलतोमरसूर्यद्वीपचर्मधरा-स्तथा। अक्षमाला वरधरा वामे घण्टखट्वाङ्गचापपात्रध्वजाङ्कुशदण्डोत्पला वेदाचरणसंयुक्तं क्रोडा-नन्दसुशोभिता” (व. ति., पृ० 124)।

21. सुवीरा

नगर में सुवीरा है, जो षण्मुखी है। मुखों का वर्ण कृष्ण, श्वेत, रक्त, धूम्र, पीत तथा हरित है। यह महारौद्र रूप में अट्टहास करती है। भुजाएँ अष्टादश हैं। वाम हाथों में यन्त्र, मुद्रा, घण्टा, ज्वाला, दीपक, विश्ववज्र, ध्वजा, ब्रह्ममुण्ड, कुठार तथा पाश हैं। दक्षिण हाथों में वज्र, त्रिशूल, डमरु, छुरिका, कर्ति, परशु, रत्न, वेणु और पर्वत हैं।

“नगरे सुवीरा ख्याता षण्मुखी कृष्णमेव च श्वेतरक्तधूम्रपीतहरितस्तथा महारौद्रा सहासमेव च। भुजाष्टादश चैव सुवीरालिङ्गणस्तथा। वामे ज(य)न्त्रमुद्रा, घण्टाज्वालादीपकविश्व-वज्रध्वजा ब्रह्ममुण्डकुठारपाशमेव च। दक्षिणवज्रत्रिशूलडमरुछुरिकार्कतिपरशुरत्नवेणुपर्वताः। नानाक्रोडानन्दसुशोभिता” (व. ति०, पृ० 124)।

22. महाबला

सिन्धु में महाबला है, जो चारमुखी है, जिनके वर्ण श्याम, कृष्ण, पीत तथा रक्त हैं। इसके अष्टादश भुजाएँ हैं। इसका स्वरूप महाघोर, ललज्जिह्वा, दंष्ट्रोत्कट भीषण है। वाम हाथों में घण्टा, फेट, दन्त, खट्वाङ्ग, शूर(ल), मुसल, काद्य और वर हैं तथा दक्षिण हाथों में वज्र, खड्ग,

अंकुश, डमरु, अभय, कर्ति, त्रिशूल तथा चक्र हैं। दो हाथों में हस्तिचर्म है। षण्मुद्राओं से मुद्रित तथा मुण्डमाला से सुशोभित है।

“महाबला चाश्रुवाहिन्यां चतुर्वक्त्रा श्याममेव च। कृष्णरक्तपीतवदना भुजाष्टादशमेव च। ललज्जिह्वा महाघोरा दंष्ट्रोत्कटभीषणा। वामे घण्टफेत्(ट)दन्तं खट्वाङ्गशूर(ल)मुसलं काद्यं वरस्तथा। दक्षिणे वज्रखड्गाङ्कुशडमरु अभयकर्तित्रिशूलचक्रस्तथा। हस्तिचर्मा द्विहस्ता प्रज्वालितानुरागिनी मुद्राषण्मुद्रितां सर्वा मुण्डमालासुशोभिता” (व० ति०, पृ० 124-25)।

23. चक्रवर्तिनी

मेरु में चक्रवर्तिनी स्थित है। यह आठ वक्त्र वाली है। महापीत तथा भैरव से युक्त भीषण रूप वाली है। ये मुख श्वेत, रक्त, धूम्र, पिङ्गल, कृष्ण, श्याम तथा राग वर्ण के हैं। अष्टादश भुजाएँ हैं, रौद्र स्वभाव की है तथा छः मूल मुद्राओं से विभूषित है। वाम हाथों में घण्टा, पात्र, पाश, ज्वाला, खट्वाङ्ग, वेणु, कमण्डलु तथा सूत्र हैं, दो हाथों में हस्तिचर्म है। दक्षिण हाथों में वज्र, कर्ति, परशु, त्रिशूल, डमरु, चक्र, दण्ड तथा मुसल हैं। महाज्ञानरस से युक्त एवं क्रीडानन्द में मग्न है।

“मरौ तु चक्रवर्तिनी चैव महाक्षेत्राधिनाथास्तथा। अष्टवक्त्रा महापीता भैरवान्वितभीषणा श्वेतरक्तधूम्रपिङ्गलं कृष्णश्यामरागस्तथा। भुजाष्टादशा रौद्रं षण्मूलमुद्राविभूषिता। वामे घण्टा पात्रपाशज्वाला वै खट्वाङ्गवेनुकमण्डरु(लु)सूत्रा हस्तिचर्म द्विहस्ताभ्यां पञ्चमुद्राविभूषिता। दक्षिणे वज्रकर्तिपरशुत्रिशूलडमरुचक्रदन्दं(ण्डं)मूग(स)लस्तथा। महाज्ञानरसैर्युक्ता क्रीडानन्दसुशोभिता।”

(व० ति०, पृ० 125)

24. महावीर्या

कुलूता में महावीर्या अवस्थित है, जो तीन वक्त्र वाली है, जिनके वर्ण धूम्र, श्याम तथा रक्त हैं। ये तीन नेत्र तथा महाभयानक रूपी हैं। अष्टादश भुजाओं तथा मुण्डमाला से सुशोभित है। दक्षिण हाथों में वज्र, खड्ग, मुसल, अंकुश, मेखला, कर्ति, परशु, रत्न, सिरा तथा वाम हाथों में घण्टा, डमरु, पाश, शूर (ल), पात्र, तर्जनी, तोमर, कुण्ड तथा त्रिशूल हैं। भीषण अट्टहास करती हुई गन्ध पुष्प से युक्त है।

“महावीर्या बालशिङ्खानवाहिनी त्रिवक्त्रा धूम्रवदना तथा श्यामरक्तत्रिनेत्रा च महाभीमा भयानका। हस्ताष्टादश चैव मुण्डमाला सुशोभिता। दक्षिणे वज्रखड्गमुशलाङ्कुशमेखलाकर्तिपरशु-रत्नसिराघण्टडमरुपाशशूर(ल)स्तथा पात्र तर्जन तोमरा(रा)कुण्डत्रिशूला वामे तथा। महाहासास्तु भीषणा गन्ध पुष्पा महालिङ्गनस्तथा” (व० ति०, पृ० 125)।

मण्डल के चारों द्वारों पर स्थित डाकिनी आदि का स्वरूप इस प्रकार है—

25. डाकिनी

यह दो भुजाओं वाली तथा श्वेतवर्ण की है। वज्र और घण्टा से आलिङ्गित है तथा कटि व्याघ्रचर्म से आवृत है। डाकिनी आलिङ्गित चार भुजाओं में प्रास, कर्ति, खट्वाङ्ग तथा डमरु हैं।

आनन्द रूपी, कृष्णवर्ण के भयानक स्वरूप वाली तथा महामुद्रा से विभूषित भैरव से युक्त भीषण रूप वाली है।

“द्विभुजामेकवदना श्वेतवर्णा सुशोभिता वज्रघण्टालिङ्गिता चैव व्याघ्रचर्मवृता कटिः डाकिन्यालिङ्गितभुजा किं चतुर्भुजाः प्रातः(स)र्कतिखट्वाङ्ग डमरुस्तथा कृष्णवर्णा भयानका आनन्द-रूपधरा । महामुद्राविभूषिता भैरवान्वितभूषणा” (व० ति०, पृ० 125)।

26. लामा

चार भुजाओं वाली श्यामवर्ण की लामा है। इसके हाथों में कर्ति, कपाल, खट्वांग तथा डमरु हैं। परमानन्द रूप से तीन वक्त्र तथा षड्भुजाओं वाली भी है। इसकी भुजाओं में वज्र, घण्टा, डमरु, खट्वांग, हस्तिचर्म हैं तथा हार और नूपुर से विभूषित हैं। लामालिङ्गित शब्दान्वित पीतवर्ण के आलीढासन में स्थित भैरव और कालरात्रि को पाद से आक्रान्त की हुई है।

“श्यामालामालिङ्गणा चतुर्भुजा कर्तिकपालखट्वाङ्गडमरुस्तथा । श्रीपरमानन्दरूपेण(ण)त्रिवक्त्रा षड्भुजास्तथा । वज्रघण्टाडमरुखट्वाङ्गहस्तिचर्मास्तथा हारनौपुरविभूषिता लामालिङ्गनशब्दान्विता पीतवर्णा तु आलीढासनसंस्थिता । भैरवं कालरात्रिं च पदाक्रान्तसुशोभिता” (व० ति०, पृ० 125)।

27. रूपिणी

विरमानन्दस्वरूपिणी रूपिणी रक्तवर्ण की, चार मुखवाली महाभीम प्रलय काल की अग्नि के समान प्रभा वाली है। इनके वर्ण राग, श्याम, कृष्ण तथा पीत हैं तथा आठ भुजाओं वाली है। दो हाथों में हस्तिचर्म, वज्र, घण्टा, डमरु, खट्वांग, परशु तथा पाश हैं। यह महा अनुराग से रक्त है।

“विरमानन्दरूपाद्या रक्तवर्णसुरूपिणी । चतुर्वक्त्रा महाभीमा प्रलयाग्निसमप्रभा । रागश्याम-कृष्णपीतस्तथा भुजाष्टकरा रौद्रं महाङ्कुशा तु हसिता । हस्तिचर्मं द्विहस्ताभ्यां वज्रघण्टाडमरुं तथा खट्वाङ्गपरशुपाशस्तथा । महारागानुरागिणी परा” (व० ति०, पृ० 125)।

28. खण्डरोहा

खण्डरोहा भैरव से युक्त भीषण स्वरूपिणी है। रक्त वर्ण की चार भुजाओं वाली है। इसके हाथों में पात्र, कर्ति, डमरु, खट्वांग हैं तथा भैरव और कालरात्रि को पदाक्रान्त किये सुशोभित हैं। सहजानन्द स्वरूपिणी खण्डरोहा पीतवर्ण की महाघोर रूपी द्वादश भुजाओं से युक्त है। चार मुख हैं, जो पीत, रक्त, श्याम, तथा कृष्ण वर्ण के हैं। दक्षिण भुजाओं में वज्र, डमरु, अंकुश, परशु त्रिशूल हैं। वाम भुजाओं में घण्टा, खट्वांग, पात्र, पाश, ब्रह्ममुण्ड तथा दो हाथों में हस्ति चर्म है। रूपिणी से आलिङ्गित है, देवी की चार भुजाएँ हैं, इन भुजाओं में खट्वांग, डमरु, पाश, कर्ति धारण किये हुये हैं। देवी शृंगार से युक्त व्याघ्रचर्म पहने हुए हार और नूपुर से विभूषित है। महाभैरवकालरात्रि को अनुरागपूर्वक आलिङ्गित किये हुए है।

“खण्डरोहा तु लिङ्गं च भैरवान्वितभीषणा । रक्तवर्णा महारम्या चतुर्भुजाकरान्वितम् । पात्रं कर्ति डमरुखट्वाङ्गमेव च । भैरवं कालरात्रिं च पादाक्रान्ता तु शोभिता । सहजस्वभुजाद्वादशास्तथा । चतुर्वक्त्रा महाशान्ता पीतरक्तश्यामकृष्णस्तथा । दक्षिणभुजवज्रडमरु अङ्कुशपरशु-त्रिशूलाः । वामे घण्टखट्वाङ्गपात्रपाशब्रह्ममुण्डस्तथा । हस्तिचर्मा द्विहस्ताभ्यां रूपिण्यालिङ्गितं सुखः । चतुर्भुजा महादेव्या खट्वाङ्गडमरुपाशकतिस्तथा । गौरवर्णा महादेवी शृङ्गाररसा रूपरसान्विता व्याघ्रचर्मनिवासना हारनौपुरविभूषिता । महाभैरवकालरात्रि च देव्यालिङ्गानुरागिनी” ।

(व० ति०, पृ० 125-26)

मण्डल की चारों दिशाओं में स्थित काकास्यादि का स्वरूप इस प्रकार है—

29. काकास्या¹

कोणों में काकास्या महादेवता नीलवर्ण की चार भुजाओं वाली है । हाथों में कर्ति, पात्र, खट्वांग तथा डमरु हैं । डाकिनी देवी को अनुराग पूर्वक आलिङ्गित किये हैं । हाराद्धहार से समायुक्त लपलपाती जिह्वा लिये भयंकर रूपवाली है । महाप्रेत समारूढ़ मुण्डमाला धारण किये तथा डाकिनी शुष्कमुण्ड विभूषित है ।

“कोणेषु महावीरा काकास्यादिदेवता नीलवर्णाभा चतुर्भुजास्तथा सव्यकर्तिपात्रखट्वाङ्ग-डमरु तथा । डाकिन्यादि देवीश्च आलिङ्गनानुरागिनी । हाराद्धाहारादिसमायुक्तं ललज्जित्वा भयङ्करा । महाप्रेतसमारूढा मुण्डमालावलम्बिता । डाकिन्या महारागा शुष्कमुण्डविभूषिता” ।

(व० ति०, पृ० 126)

30. उलूकास्या

उलूकास्या श्याम वर्ण की चार भुजाओं वाली भयंकर रूपधारिणी है । हाथों में कर्ति, पात्र, खट्वांग तथा डमरु हैं । डाकिनी आदि देवियों के द्वारा आलिङ्गित हैं । डाकिनी देवी कृष्ण वर्ण की, महा प्रेतासन पर आरूढ़ नाना तेज वाली है ।

“उलूकास्या श्यामवदना चतुर्भुजा भयङ्करा । सव्यकर्तिपात्रखट्वाङ्गडमरुस्तथा । डाकिन्यादि-देव्यालिङ्गितशोभिता डाकिनी देवी कृष्णलिङ्गी शुभकारिणी महाप्रेतासनारूढा नानातेजसमप्रभा ।”

(व० ति० पृ० 126)

31. श्वानास्या

श्वानास्या रक्त वर्ण की चार भुजाओं वाली हास्य रूप में स्थित है । हाथों में कर्ति, कपाल, खट्वांग तथा डमरु हैं तथा रक्त वर्ण की है । षण्मुद्राओं से विभूषित तथा महाप्रेतासन में स्थित है ।

1. संवर-मण्डल में जो काकास्यादि हैं इन्हें डाकिनी आदि की तरह परमेशानुगत बताया गया है—

‘डाकिन्यादिवत् परमेशानुगताः’ (निष्पन्नयोगावली पृ०, 27) ।

“श्वानास्या रागवर्णा चतुर्भुजा तु हसिता । सव्यकर्तिकपाला खट्वाङ्गडमरुस्तथा । डाकिन्या-
लिङ्गितश्चैव महारौद्रं तु हसिता । डाकिन्यादेव्यारक्तवर्णा स्वरूपिणम् । षण्मुद्रविभूषिता महाप्रेता-
सनस्थिता” (व० ति०, पृ० 126) ।

32. शूकरास्या

शूकरास्या महाघोररूपिणी पीतवर्ण की चतुर्भुजाओं वाली है । डाकिनी द्वारा आलिङ्गित है, जो महाघोररूपी है । हाथों में कर्ति, कपाल, खट्वांग तथा डमरु हैं । डाकिनी पीत वर्ण की, हार नूपुर आदि से युक्त शृंगार से सुन्दर है । महाप्रेत पर समारूढ़ बड़ी-बड़ी दाढ़ों वाली हँसती हुई है ।

“शुक्ला श्यामा (शूकरास्या) महाघोरा पीतवर्णा चतुर्भुजा । डाकिनीमालिङ्गिता महाघोरा तु घोलालाः सव्ये कर्ति कपालं खट्वाङ्गडमरुस्तथा । डाकिनी पीतवर्णा महाताद(ड)नधर्मता । हारनौपुरशृङ्गारा रसमुन्दरम् । महाप्रेतसमारूढा महादंष्ट्रास्तु हसिता” (व० ति०, पृ० 126) ।

आग्नेयादि कोणों में स्थित यमदाढी आदि का स्वरूप इस प्रकार है—

33. यमदाढी¹

यमदाढी कृष्णपीत वर्ण की तथा चार भुजाओं वाली है । हाथों में कर्ति, कपाल, खट्वांग तथा डमरु लिये है । साकिनी से आलिङ्गित है । साकिनी का मुख कृष्ण वर्ण का है । यह नग्न हाहाकार करती हुई जिह्वा तथा रसों से युक्त है । हाडाभरण धारण किये तथा प्रेत पर आरूढ़ भीषण रूप वाली है ।

“कोणेषु यमदाढी कृष्णपीता चतुर्भुजा । सव्यकर्तिकपालखट्वांगडमरुस्तथा । साकिन्यालिङ्गिता कृष्णवक्त्रास्तु साकिनी । नग्नहाहाकारजिह्वा रसान्वितं तथा । हाडाभरणं च प्रेतसंस्था तु भीषणा” ।
(व० ति०, पृ० 126)

34. यमदूती

यमदूती पीतरक्त वर्ण की चार भुजाओं वाली है । हाथों में कर्ति, कपाल, खट्वांग तथा डमरु हैं । यह हाकिनी से आलिङ्गित है । हाकिनी देवी रौद्र स्वरूप की रक्तवर्णी तथा झनझनाते हार-नूपुर आदि से विभूषित है । महाप्रेताधिवासिनी राक्षसादि को मर्दित किये हुये है ।

“यमद्युति पीतरक्ता चतुर्भुजा । सव्ये कर्तिकपालं च खट्वाङ्ग डमरुमेव च । हाकिन्यालिङ्गितं चैव महोत्साहा तु हसिता । हाकिनीदेव्यो रक्तवर्णास्तु रौद्रता । महाहारनौपुरौ झुझरायलोत्ता । महाप्रेताधिवासी स्वराक्षसादिमर्दिनी” (व० ति०, पृ० 126) ।

1. यमदाढी आदि चार देवता, जो कोणों में स्थित हैं, संवरमण्डल के अनुसार मानुषी मुख वाली हैं—‘कोणेषु यमदाढी-यमदूती-यमदंष्ट्री-यममथन्यो मानुषीमुखाः’ ।

(निष्पन्नयोगावली, पृ० 27)

35. यमदंष्ट्री

यमदंष्ट्री श्यामरक्त वर्ण की चार भुजाओं वाली है। हाथों में कर्ति, कपाल, खट्वांग तथा डमरु लिये हुए है। योगिनी द्वारा आलिङ्गित तथा चुम्बित है। योगिनी श्वेत वक्त्र वाली है, जिसे अनुरागपूर्वक आलिङ्गित किये है। हाहाकार के अट्टहास से रौद्र तथा हूँकार भयानक है। महाश्वेत(प्रेत)समारूढ भीषण स्वरूपिणी है।

“यमदंष्ट्री श्यामरक्ता चतुर्भुजाकरान्विता । सव्यकर्तिकपालखट्वाङ्गडमरुमेव च । योगिन्या-
लिङ्गितं चैव कोलाहलचुम्बिकास्तथा । योगिनी श्वेतवक्त्रा कट्यालिङ्गितनुरागिणी । हाहाट्टहासरौद्रं
हुहुकारभयानका । महाश्वेतासमारूढं दंष्ट्रोत्कटभीषणम्” (व० ति०, पृ० 126) ।

36. यममथनी

यममथनी कृष्णाङ्गी तथा चतुर्भुजा से युक्त है। यह वज्रदेवी द्वारा आलिङ्गित है। हाथों में कर्ति, कपाल, खट्वांग तथा डमरु हैं। वज्रदेवी रक्तवर्ण की महोज्ज्वला है। महाप्रेत समारूढ हीहीकार करते हुये भयानक स्वरूप की तथा महामांस एवं वसासहित मांस का भक्षण करती है।

“यममथनी श्यामकृष्णाङ्गी चतुर्भुजा करान्विता । वज्रदेव्यालिङ्गितास्तासु महामुखवज्रकरा-
न्विता । सव्ये कर्तिकपालखट्वाङ्गडमरुस्तथा । वज्रदेव्या रक्तवर्णा क्रीडानन्दनमहोज्ज्वला । महाप्रेता-
सनारूढा हीहीकारभयानका । महामांसस्तु भोजिता वशामांसास्तु भोजिता” ।

(व० ति०, पृ० 126-27)

37. हेरुक¹

श्री हेरुक महाकृष्णवर्ण के महाभीषण शब्द करते हुए आठ मुख तथा 16 भुजाओं से युक्त हैं। प्रत्येक हाथ करवात (वाल) से विभूषित हैं। मूल मुख महाकृष्ण अन्य मुख श्वेत, रक्त, पीत,

1. हेरुक के नाना रूपों का विवरण देते हुए विनयतोष भट्टाचार्य ने अपने ग्रन्थ *An Introduction to Buddhist Esoterism*, पृ० 131-32 में लिखा है कि शक्तियों की भिन्नता के कारण ये विभिन्न नामों से जाने जाते हैं। यथा जब चित्रसेना के साथ युगनद्ध हों तो बुद्धकपाल, वज्रवाराही के साथ संयुक्त हों तो वज्रडाक या संवर, वज्रयोगिनी के साथ युगनद्ध रूप में हों तो बुद्ध-डाकिनी या महामाया, ये सभी हेरुक के स्वरूप हैं। अपने दूसरे ग्रन्थ *Indian Buddhist Iconography*, पृ० 61 में वे लिखते हैं कि हेरुक प्रायः शक्ति या प्रज्ञा के साथ युगनद्ध रूप में उपलब्ध होते हैं। द्विभुज, चतुर्भुज, द्वादशभुज तथा षोडशभुज अनेक प्रकार से हेरुक के स्वरूप का वर्णन मिलता है। साधनमाला में पांच हेरुकसाधन प्राप्त हैं। साधनमाला की भूमिका पृ० CLXI में ढाका म्युजियम में प्राप्त हेरुक की मूर्ति का स्वरूप भी दिया है, जिसमें हेरुक देव मात्र हैं। साधनमाला, निष्पन्नयोगावली एवं अन्य प्राप्त साहित्य के आधार पर Prof. G. Tucci ने अपने ग्रन्थ *'The Theory and Practice of Maṇḍala'* पृ० 68-69 में हेरुक के स्वरूप का विस्तार से विवरण प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार उन्होंने अपने दूसरे ग्रन्थ *'The*

श्याम, हरित तथा कृष्ण वर्ण तथा ऊर्ध्व मुख धूम्र वर्ण का है, जो देखने में भीषण स्वरूपवाला प्रलयकाल की अग्नि के समान है। तीन ऊर्ध्व पिङ्गल नेत्र तथा षण्मुद्राओं से विभूषित हैं। दक्षिण हाथों में हस्ति, अश्व, खर, गो, उष्ट्र, मनुष्य, शार्दूल तथा मार्जार और वाम हाथों में पृथिवी, वरुण, पवन, मेघ, इन्द्र, सूर्य, यम तथा कुबेर हैं। देह मुण्डमाला तथा शुष्क मुण्ड से विभूषित है। हाडाभरण तथा नूपुर से विभूषित प्रलय की अग्नि की तरह प्रभा वाली है। चारों मार तथा ब्रह्मा, इन्द्र, उपेन्द्र और माधव को समाक्रान्त किये है। ये भगवती प्रज्ञा नैरात्म्या को आलिङ्गित किये हुये हैं। भगवती नैरात्म्या एक मुख तथा दो भुजा वाली है। इन के हाथों में कर्ति और कपाल हैं तथा शुष्क मुद्रा से विभूषित हैं। ये दिगम्बर नग्न तथा ऊर्ध्वमुख केश वाली हैं। इस तरह के सर्व सौख्य से युक्त हेरुक प्रेतारूढ आलिकालि पर संस्थित हैं।

“द्वासप्ततिसहस्रनाडिसम्भोगस्तु नायके किं नायके। एकः श्रीहेरुको वीरो नैरात्मा शुभकारिणी। महाकृष्णवर्ण भैरवान्वितभीषणम् अष्टास्या षोडशभुजा सर्वे करवातभूषिता। मूलमुखे महाकृष्णं श्वेतरक्तपीतश्यामहरितकृष्णा। ऊर्ध्वमुखं महाधूम्रं महादंष्ट्रोत्कटभीषणम्। प्रलयाग्निसमप्रभा भृकुटिकोटिमहाभीषणम्। ऊर्ध्वपिङ्गलमूर्द्धजं त्रिनेत्रं षण्मुद्राविभूषितं दक्षिणभुजे हस्तिअश्वखरगावोष्ट्रमनुष्यसादुरमर्जारस्तथा। वामभुजे पृथिवीवरुणपवनमेघइन्द्रसूर्ययमकुबेरस्तथा। मुण्डमालाधरा देहशुष्कमुण्डाविभूषिता हाडाभरणनूपुरप्रलयाग्निसमप्रभा। चतुर्मारसमाक्रान्ता ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रमाधवस्तथा। चतुश्चरणसमाक्रान्ता प्रज्ञालिङ्गानुरागिणी नैरात्म्यालिङ्गनसुखं भगवती नैरात्मा एकवक्त्रा द्विभुजा सव्ये कर्तिकपालं च शुष्कमुद्राविभूषिता। नगना ऊर्ध्वकेशास्तु दिगम्बरी तथा। नानामहाहेरुकं वै क्रोडानन्दस्तु महाबला। एवंभूतं महाहेवजं विभावयेत्। सर्वसौख्यसंयुक्तं हेरुकं परमेश्वरम्। प्रभुं किं प्रभुम्। इत्येता वज्रयोगिन्योच्छत्रिसंवीरवीरेश्वरं प्रभुम्। प्रेतारूढा त्रिनेत्रा आलिकालिस्तु संस्थितः” (व० ति०, पृ० 127)।

Temples of Western Tibet and their Artistic Symbolism' पृ० 23, 31 तथा 38 पर द्विभुज तथा चतुर्भुज हेरुक का स्वरूप उद्धृत किया है। द्वादशभुज हेरुक का स्वरूप Śri Cakrasamvara Tantra (Ed. by Kazi Dawa Samdup) Introduction, पृ० 22 पर विवृत किया है। मूलतः यह भिन्नता तन्त्र के आम्नाय या सिद्ध गुरु-शिष्यों को परम्परा के कारण मानी जाती है। परन्तु प्रस्तुत विवरण उपर्युक्त विवरणों से सर्वथा भिन्न हेरुक का स्वरूप प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत सन्दर्भ में 'वसन्ततिलक' ही हेरुक का स्वरूप है।

नरोपा की प्रभास्वर योगसाधना

—डा० ठाकुरसेन नेगी—

['घोः' के नवें अंक में नरोपा को छः योगसाधनाओं में से तृतीय स्वप्नयोग-साधना का संक्षिप्त वर्णन किया जा चुका है। प्रस्तुत अंक में चतुर्थ प्रभास्वरयोग-साधना का संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है। संक्षेप में संसार के सभी प्राणी इस प्रभास्वर प्रकाश का कुछ क्षणों के लिये अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में अनुभव करते हैं, परन्तु साधक समाधि की परम अवस्था में अपनी इच्छा से इस प्रभास्वर प्रकाश का अनुभव कर लेता है, बुद्ध के लिये तो वह सहज संवेद्य है। प्रभास्वर प्रकाश का अवतरण बुद्धत्व के अधिगम की अवस्था से अभिन्न है। जीवन की परिसमाप्ति के बाद उक्त सिद्धान्त को नहीं समझा जा सकता।]

प्रभास्वर योग का सिद्धान्त

प्रभास्वर¹ अनभिध्यक्तता (हेतु से समुत्पन्न वस्तुस्थिति के अभाव) का पर्याय है, वह 'निर्वाण' की अवस्था है, परमार्थ है, बुद्ध की पारमार्थिक चैतन्यावस्था है, वह धर्मकाय अथवा निर्वाण की रहस्यमयी आभा है, जो सांसारिक क्लेशों से असंस्पृष्ट है। वह वर्णनातीत है। उसे हम केवल जान सकते हैं और उसे जानना समग्र वस्तुओं की यथार्थता को जान लेना है। वर्णरहित होने के कारण वह गुणातीत प्रभास्वर (शुद्ध ज्योति) है। उसकी सीमा नहीं है। वह ब्रह्माण्ड में व्याप्त महत् तत्त्व (ज्ञान) है। सांसारिक विषयज्ञान से उसे नहीं जान सकते। उसका कोई रूप नहीं है। इसीलिये तो वह रूप में न बँधने वाले आकाश के सदृश है।

संसार के सभी प्राणी (मानव) इस प्रभास्वर प्रकाश का कुछ क्षणों के लिये अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में अनुभव करते हैं। परन्तु योगी (साधक) समाधि की परमावस्था में अपनी इच्छा से उस प्रभास्वर प्रकाश का अनुभव कर लेते हैं। बुद्ध के लिये तो वह सहज संवेद्य है। प्रभास्वर प्रकाश का अवतरण बुद्धत्व के अधिगम की अवस्था से अभिन्न है। जीवन की परिसमाप्ति से बाद उक्त सिद्धान्त को नहीं समझा जा सकता, जैसा कि "वर-दो-थो-डोल" में कहा गया है "अतः गुरु जिज्ञासु साधक को प्रेरित करता है कि उसे मानव योनि में आकर परम चैतन्य के इस विरल अवसर को यों ही व्यर्थ समाप्त नहीं होने देना चाहिये"।

अन्यान्य भारतीय मनीषियों की भाँति शान्तिदेव ने भी मनुष्य-जन्म को केवल भोग-योनि न मानकर पुरुषार्थ-साधक दुर्लभ संयोग माना है। यह क्या साधारण सुयोग है कि आज हमने पुरुषार्थों के साधन करने में समर्थ मनुष्य-शरीर को पाया है? नरक में नहीं, प्रेतयोनि में नहीं, देवता या राक्षस नहीं, गूँगे या निर्बुद्धिक नहीं—बल्कि सुन्दर मनुष्य का जन्म पाया है। इसलिये

1. प्रभास्वरं परमार्थसत्यम् । (गु० स० प्र०, पृ० 33, 71)

यदि इसमें परहित कामना मन में न जगी तो फिर कहाँ जगेगी। क्या इस प्रकार का समागम—समस्त शुभ संयोगों की एकत्र प्राप्ति प्रतिदिन होती है ?

बोधिचर्यावतार में भी कहा है--

क्षणसम्पदियं सुदुर्लभा प्रतिलब्धा पुरुषार्थसाधनी ।
यदि नात्र विचिन्त्यते हितं पुनरप्येष समागमः कुतः ॥ (1.4)

भागवत में भी कहा है कि सुदुर्लभ मानव-शरीर रूपी नौका सुलभ हो गई है, इस नैया को खेने के लिए सद्गुरु जैसा कर्णधार भी प्राप्त हो गया है, भगवान् की कृपा की अनुकूल हवा तो चल ही रही है, इस समय इन सुन्दर संयोगों के प्राप्त होने के दुर्लभ क्षण में यदि मनुष्य भवसागर को न तर सका, तो वह आत्मघाती के अतिरिक्त और कुछ नहीं है—आत्महा स्वयं अपने आपको मार डालता है—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुक्लृप्तं गुरुकर्णधारम् ।
मयानुकूलेन समीरणेरितं
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥ (भाग० 11.20.17)

किन्तु बौद्ध साधक अपने आपको तारने के लिये उतना चिन्तित नहीं रहता, जितना कि प्राणिमात्र की दुःख-निवृत्ति के लिये। यह सन्त (साधक) मुक्ति या निर्वाण नहीं, बल्कि सर्वप्राणियों का क्लेशशमन करना चाहता है। बोधिचित्त का साधक अपने निर्वाण की चिन्ता नहीं करता। वह अपने पुण्य का एक ही उपयोग करना जानता है—यदि मैंने कुछ पुण्य किया हो, कुछ शुभ आचरण किया हो, तो उससे समस्त जगत् के प्राणियों का दुःख दूर हो जाय—

एवं सर्वमिदं कृत्वा यन्मयासादितं शुभम् ।
तेन स्यां सर्वसत्त्वानां सर्वदुःखप्रशान्तिकृत् ॥ (बो० च० 3.6)

केवल इतना ही नहीं वरन् वह परिनिर्वाणाभिमुख बुद्धों से हाथ जोड़कर प्रार्थना करता है कि वे निर्वाण प्राप्त करने में जल्दी न करें, अनन्त कल्पों तक ठहरें, ताकि संसार में अंधेरा न हो जाय और जगत् के दुःखी प्राणी भटक-भटक के मरने न लगें—

निर्वातुकामांश्च जिनान् याचयामि कृताञ्जलिः ।
कल्पाननन्तांस्तिष्ठन्तु मा भूदन्धमिदं जगत् ॥ बो० च० 3.5 ॥

इस प्रकार अध्यात्म की अन्तःज्योति से अनुप्राणित तिब्बत (भोट देश) के गुरुओं के उपदेशों में भी प्रभास्वर योग को इस प्रकार समझाया गया है—जिस तरह अ-रूप का ज्ञान अगम्य (दुर्बोध) है, उसी तरह कर्म और पुनर्जन्म से छुटकारा पाना भी कठिन है तथा इस प्रभास्वर प्रकाश का साक्षात्कार (सूर्य, चन्द्र, अग्नि और रत्न की मिश्रभा से प्रदीप्त) भी अननुमेय है। प्रभास्वर किरण की अनन्त ज्योति अन्धकार पर अपना जाल पसारती है। जहाँ से सूर्य का प्रकाश और ताप आता है, सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा प्रदीप्त है और चन्द्रमा से शीतलता तथा उसी प्रभास्वर-

मय प्रकाश से सर्वव्यापी बोधि (प्रज्ञा) व्याप्त है। इस प्रकार सृष्टि के मूल में विद्यमान शून्यता प्रकृति की संभूत (दृष्टि या रूपविषयक) वस्तुओं को प्रदीप्त करती है। ठीक उसी प्रकार जगत् के समस्त व्यापार भी उसी के द्वारा परिचालित होते हैं।

प्रभास्वर योग प्रत्यभिज्ञान की यौगिक शिक्षा

प्रभास्वर प्रकाश योग की प्राथमिक साधनाओं में कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं, जिनसे साधनाभ्यास के समय उत्पन्न होने वाली साधक की सभी बाधाएँ दूर हो सकें और अनुकूल परिस्थितियाँ प्रभास्वर प्रकाश पहचानने में आ सकें। यह क्रम स्वप्नयोग के समान ही है। इसके अतिरिक्त साधक को अच्छा और पुष्ट भोजन करना चाहिये। अपने शरीर को शुद्धि (अभ्यंजन चिकित्सा), किसी शान्त स्थान में वास, अपने बिन्दु के रक्षण के साथ सब समय उसे सहज और विनम्र होना चाहिये। इस ध्यानाभ्यास के समय साधक को 1/3 भाग चण्डाली के अभ्यास में लगाना चाहिये और दो तिहाई भाग प्रभास्वर प्रकाश योग में लगाना चाहिये। साधक (योगी) को पहले नीले वज्रधर को उसकी मुद्रा के साथ हृदयचक्र में बैठे हुए देखना चाहिये और उनसे सहज प्रकाश को विकीर्ण करने के लिये प्रार्थना करना चाहिये। तब साधक (योगी) को नीले हूँ को हृदयचक्र में देखना चाहिये और प्राणवायु को रोके रखना चाहिये चित्त (मन) में हूँ को काफी देर तक रोकना चाहिये, तब सब बाह्य जगत् उसके शरीर में तथा शरीर (देह) हूँ में और हूँ नाद में और नाद विराट् शून्य में विलीन हो जायगा। तत्पश्चात् साधक शून्य पर ध्यान लगाये और अपने श्वास को रोके। इस समाधि से उठने पर साधक (योगी) को अपने मायिक संरक्षक बुद्ध (इष्टदेव) का दर्शन करना चाहिये और इसी तरह उसे अन्य देवी-देवों का भी।

कुछ लोग यह बताते हैं कि यह क्रिया (अभ्यास) केवल रात में की जाय, लेकिन वास्तव में सच यह है कि यदि कोई साधक पूरे दिन अभ्यास करता है, तो वह पूर्णरूप से प्राण और चित्त (मन) के अधिकार का विस्तार (वृद्धि) प्रबल रूप से कर सकता है और प्रभास्वर प्रकाश के स्फुरण को स्थिर कर सकता है। इससे उसके लिये यह बहुत सरल हो जायगा कि वह सोते वक्त प्रकाश को पहचान सके। इसके अतिरिक्त प्राणवायु को रोकने से साधक को और भी बहुत से लाभ प्राप्त होते हैं।

अन्य तरीकों से प्रभास्वर प्रकाश का प्रत्यभिज्ञान करना बड़ा कठिन है और वह प्रभास्वर प्रकाश जो ज्ञात हो गया है, बहुत देर तक नहीं रह सकता। जो साधक इन साधनाओं को करता है, वह प्राणवायु को मध्यनाड़ी (सुषुम्ना नाड़ी) में लाकर स्पष्ट करता है। इस प्रकार प्रभास्वर प्रकाश योग का यह महत्त्वपूर्ण अभ्यास कहलाता है।

सोते समय प्रभास्वर प्रकाश को पकड़ना

योगी जन चार प्रकार के शून्य को प्रकाशित (उद्घाटित) करते हैं। वे मध्यनाड़ी (अवधूती) में प्राण को दिन में एक जगह एकत्रित करते हैं। तब वे सोते में भी वैसा कर सकते हैं, जब वे हृदयचक्र में हूँ पर एकाग्र होने लगे। सोने के पहले प्रभास्वर प्रकाश को पकड़ने का सबसे उचित समय मध्य रात्रि नहीं, बल्कि गहरी निद्रा है। प्रातःकाल में जब निद्रा हल्की हो तो

वह सबसे अच्छा समय है कि बगल में दोनों घुटनों के बल झुककर पुनः लेट जाय और इस साधनाभ्यास को जारी रखें।

यहाँ प्रभास्वर प्रकाश योग के साधनाभ्यास के दो मौलिक तथ्य हैं—(1) पाँच बीजाक्षरों को पाँच पत्रों वाले कमलपत्र पर स्थित हृदयचक्र में देखना (2) और श्वास को रोके रखना।

नींद आने के पहले साधक (योगी) को बार-बार यानी बीसों बार यह सोचना चाहिये कि सहज प्रभास्वर प्रकाश उसमें से निकल रहा है, अपने प्रकाश के रहस्योद्घाटन (प्रकटीकरण), वृद्धि (संवर्धन) तथा उपलब्धि (सिद्धि) के क्रम से। तब जब वह सम्पूर्ण शरीर को हूँ में अन्तर्लीन करके और हूँ को प्रभास्वर प्रकाश में लीन कर चित्त (मन) को एकाग्र करे। जब वह थोड़ा नींद में आने लगे तो उसे 'अ' पर ध्यान लगाना चाहिये। वह जब बिलकुल सो जाय तो 'नु' पर और अत्यन्त गहरी निद्रा में 'त' पर और जब वह (साधक) सोने ही लगे तब 'र' पर, 1/3 नींद आ जाने पर या 1/2 पर बेहोश हो जाने पर 'हूँ' पर ध्यान लगावे।

प्रारम्भ में (साधक) को अन्तिम दो बीजाक्षरों का अधिग्रहण करना कठिन होता है, क्योंकि वह तुरन्त सोने से प्रथम तीन बीजाक्षरों का ध्यान करते ही निद्रा में गिर पड़ता है, लेकिन बार-बार के अभ्यास करने पर धीरे-धीरे वह वैसा करने में समर्थ होने लगता है। जो साधक निद्रा की अचेतन अवस्था से परिचित नहीं रहता, उसे दिन में कठिन साधनाभ्यास करना चाहिये, जिससे कि वह और अधिक समाधि की शक्ति को प्राप्त कर सके। यह उसे अचेतन अवस्था में रहने के लिये समर्थ बनायेगा और कुछ सीमा तक प्रभास्वर प्रकाश की शिक्षाओं को प्राप्त करेगा, जिसे वह पूर्व में प्रतिभासित नहीं कर पाया है।

कुछ शिक्षाएँ बताती हैं कि यदि साधक फिर भी प्रभास्वर प्रकाश को नहीं पहचान सका, तो वह तीन दिन के लिये रात और दिन सोना बन्द करे, अर्थात् नींद का संपूर्ण परित्याग करे तथा दुबारा इसके लिये प्रयत्न करे।

जो चारों प्रभास्वर प्रकाशों की शून्यता को स्पष्ट (प्रकाशित) करता है, उदाहरण के लिये जिसमें प्रभास्वर प्रकाश की अभिव्यापकता, प्रभास्वर प्रकाश की वृद्धि या संवर्धन, प्रभास्वर प्रकाश की उपलब्धि या सिद्धि होती है और सहज प्रकाश स्थूल और सूक्ष्म सांसारिक विचारों को समयानुकूल बनाता है तथा विवेकशील चित्त (मन) उसे पार कर जाता है, तब वह निद्रा के विशुद्ध प्रभास्वर प्रकाश को सामने देखता है। वह इतना पारदर्शी और स्पष्ट होता है, जितना बादलहीन आकाश। यह अति उत्कृष्ट अनुभव है। इसके अलावा दूसरी स्थिति में हम इसे स्पष्ट अनुभव कहते हैं, या लघुतर (कम) प्रभास्वर प्रकाश योग कहते हैं, जिसमें योगी चार प्रकार की शून्यताओं का निराकरण होने से सभी सांसारिक अभिव्यक्तियों (परिबोधों) की ऊँचाई को नहीं पहचान सकता, पर वह अत्यधिक तन्द्रा और पारदर्शिता की चकाचौंध को पार कर जाता है। इसके पश्चात् दूसरा यह निम्न प्रकार का अनुभव है, जिसमें योगी पूर्णता का या लघुतर (कम) प्रभास्वर प्रकाश का भी अभिज्ञान नहीं करता, लेकिन एक स्पष्ट और पारदर्शी पराप्रत्यक्ष चित्त (मन) का नींद की अवस्था में स्वप्नोत्पत्ति के पूर्व अनुभव करता है। यह अनुभव सम्बन्धात्मक प्रभास्वर प्रकाश का है।

यदि कोई साधक दिन में अभ्यास करता है और उससे उसे स्थिर समाधि प्राप्त हो गई है, तो उसकी शक्तियाँ दिन-रात चलेंगी और उसी में नींद और स्वप्न की विभिन्न अवस्थाएँ पैदा होंगी। ऐसी स्थिति में साधक (योगी) केवल स्वप्न ही नहीं देखता और यदि देखता है तो वह उसे तुरन्त पहचानने की स्थिति में रहता है। लेकिन कुछ गुरुओं (वज्राचार्यों) का यह भी कहना है कि यह नींद का प्रभास्वर प्रकाश नहीं, बल्कि समाधि-अनुभव है। नींद की अवस्था में यह सत्य हो सकता है। यदि कोई साधक ऐसी साधना करे तो वह बहुत शीघ्र ही अपने प्रभास्वर प्रकाश को और लघुतर (कम) प्रभास्वर प्रकाश को पहचान कर अपने अनुभव में वृद्धि करेगा। यद्यपि प्रभास्वर (प्रकाश) योग को पहचानने की अनेक विधियाँ हैं, परन्तु ऊपर बताई विधियाँ इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये पूर्णतया पर्याप्त हैं। इसलिये साधक (योगी) को किसी एक तरीके का अनुगमन करना चाहिये, जिसे वह पूर्णतया सहायक समझता है।

चार शून्यताओं की समीक्षा

चार प्रकार की शून्यता,¹ चार प्रकार के प्रभास्वर प्रकाश और चार प्रकार के आनन्द,² प्रभास्वर प्रकाश योगानुभव के हृदय हैं। जाग्रत अवस्था की साधनाओं में, दिन में मध्य नाड़ी में प्राणवायु के एकत्रीकरण के रूप में इनका परिचय होता है और जो साधक ऐसा कर सकते हैं, वे चतुर्थ शून्यता या सहज प्रभास्वर प्रकाश पर ध्यानस्थ हो पाते हैं।

चार प्रकार की शून्यताओं के प्रत्यभिज्ञान की निम्नलिखित विधियाँ हैं—

1. रात्रि में प्रभास्वर प्रकाश योग की साधना के समय साधक (योगी) को पहले हृदयचक्र में स्थित कमलपत्रों के एक पत्र 'आ' पर ध्यान लगाना चाहिये। इस साधनाभ्यास के द्वारा प्राणवायु के पंचस्कन्ध मध्यनाड़ी में सम्मिलित होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप धूँआ, चमत्कार (मृगमरीचिका) और प्रज्वलित प्रकाश (जुगनू-प्रकाश) आदि लक्षण उदित होंगे। जब वह सोता हुआ यह अनुभव करे तो उसे 'नु' पर ध्यान करना चाहिये। जहाँ पर अधिक प्राण इकट्ठे होंगे, वहाँ भेदबोधक (विभेदक) स्थूल विचार समाप्त होंगे और मौलिक शून्यता या प्रकाशोद्भव (प्रभास्वर प्रकाश का उद्गम) होगा तब साधक अनुभव करेगा कि वह बादल रहित आकाश में चमकते हुए चाँद को देख रहा है। जब साधक (योगी) और गहरी निद्रा में सो जाय तो उसे 'त' पर ध्यानस्थ होना चाहिये। इससे उसकी प्राणवायु वहाँ इकट्ठी होगी, जिससे सूक्ष्म विभेदक विचार समाप्त हो जायँगे।

2. दूसरी गहन परम शून्यता है। इससे प्रभास्वर प्रकाश की वृद्धि (संवर्धन) होगी तथा साधक (योगी) समझेगा कि वह बादल रहित आकाश में सूर्य की किरण को देख रहा है। जब वह और अधिक सो जाय, तो उसे 'र' पर ध्यानस्थ होना चाहिये जहाँ सभी प्राण इकट्ठे हों, वहाँ प्रायः सूक्ष्म विभेदक विचार समाप्त हो जायँगे।

1. शून्यचतुष्टयम्—शून्य-अतिशून्य-महाशून्य-सर्वशून्यमिति चतुःशून्यस्वरूपेणपत्रचतुष्टयम्।

(दो० को० व्या०, पृ० 151)

2. चत्वार आनन्दाः—आनन्दः, परमानन्दः, विरमानन्दः, सहजानन्दश्चेति (हे० त०, 1.1.28)

3. तीसरी महाशून्यता है, इससे प्रभास्वर प्रकाश की पूर्णता का उद्गम होगा। तब साधक अनुभव करेगा कि बादल रहित आकाश में स्वच्छ प्रभास्वर प्रकाश का गहन अन्धकार के साथ आलिंगन हो रहा है। अन्त में जब साधक (योगी) पूर्णरूप से सो जायगा या अचेतन हो जायगा, तो वह 'हूँ' पर ध्यानस्थ होगा। उस समय उसके सारे प्राण वायु की सिद्धि होगी और उसके अधिकांश सूक्ष्म विभेदक विचार समाप्त हो जायँगे।

4. चतुर्थ पूर्णशून्यता है, जिसे सहज प्रभास्वर प्रकाश भी कहते हैं। इसके उदित होनेपर साधक अनुभव करेगा कि वह स्वच्छ आकाश में प्रातःकाल की तीनों मलिनताओं (सूर्य, चन्द्र और सांध्य प्रकाश) के स्वरूप से मुक्त हो गया। इस प्रकार ये चार शून्यताएँ प्रभास्वर प्रकाश के निद्रित क्षण हैं, जिन्हें साधक (योगी) को उनका प्रत्यभिज्ञान और अभ्यास करना चाहिये।

प्रारम्भ में साधक इन चार शून्यताओं को नहीं पहचान पायगा, लेकिन उपर्युक्त विधियों द्वारा लगातार अभ्यास करने से वह ऐसा कर लेगा।

जो साधक चार शून्यताओं को पकड़ने में निपुण (प्रवीण, कुशल) नहीं हैं, उन्हें इस योग का हल्की निद्रा के समय अभ्यास करना चाहिये, पर जो साधक निपुण हों, उन्हें गहरी नींद में अभ्यास करना चाहिये और वे जो पूर्णरूप से प्रभास्वर प्रकाश को पकड़ने में समर्थ नहीं हैं, उन्हें नियमित विधि से इस साधना का अभ्यास करना चाहिये। इसके विपरीत की उपलब्धि में साधक कठिनाई महसूस करेगा। उदाहरण के लिये सहज प्रभास्वर प्रकाश से तृतीय, द्वितीय और तब मौलिक प्रभास्वर (प्रकाश) को पकड़ना चाहिये। निरन्तर साधनाभ्यास को यह मौलिक विधि बहुत महत्वपूर्ण है।

यदि कोई साधक (योगी) समाधि के समय प्रभास्वर प्रकाश को प्राण के विक्षुब्ध होने के कारण बलपूर्वक उद्गमन होने (सामने आने) के लिये बाध्य करता है, तो उसे हृदयचक्र में 'हूँ' पर ध्यानस्थ होना चाहिये, जिससे उसकी समाधि में पुनः स्थिरता आ सके। यदि वह भी सहायक नहीं है, तो उसे लघुतर (कम) प्रभास्वर प्रकाश में ही ध्यान लगाना चाहिये। यदि उस पर भी उसे लघुतर प्रभास्वर प्रकाश से बलात् उठा दिया जाय, तो उसे मायिककाय या स्वप्नयोग का अभ्यास करना चाहिये। लेकिन इसे उचित ढंग से करने के लिये साधक को पहले अपने प्राण को मध्यनाड़ी में एकत्रित करना चाहिये तथा चारों शून्यताओं को दिन के साधनाभ्यास में खोल देना चाहिये। केवल तब जब वह उस अवस्था में पहुँच जाय कि वह पूर्णरूप से प्रभास्वर प्रकाश को रात में पकड़े रख सकता है। कम प्रगति प्राप्त साधक (योगी) प्रथम या द्वितीय प्रभास्वर प्रकाश को ही पहचान सकेंगे, पर तृतीय को और सहज प्रभास्वर प्रकाश को पहचानने में उन्हें बहुत कठिनाई का अनुभव हो सकता है।

शयनकक्ष में सोने के लिये जाने से पूर्व ही यदि साधक सचेत रहे और प्रभास्वर प्रकाश को पकड़ने की तीव्रतम इच्छा पैदा करे तथा 'हूँ' पर ध्यानस्थ हो हृदयचक्र में प्रदीप्त प्रभास्वर प्रकाश को सम्पूर्ण शरीर में अभिव्याप्त करते हुए उसे रोके रखे, तो वह लघुतर (कम) प्रभास्वर प्रकाश को देखने और समझने में समर्थ होगा।

बिना स्वप्न के हल्की निद्रा में साधक चित्त (मन) की प्रकृति को चमकते देखेगा तथा बिना किसी बाधा के आर-पार (पारदर्शी) शून्य की तरह रिक्त (खाली) देखेगा। उसको जागृति उतनी स्पष्ट होगी, जैसे वह (दिन में) जगा हो। यद्यपि वह अपने असन्तुलित विचारों से छुटकारा नहीं पा सकता और कुछ देर में उसके प्रदीप्त ज्ञान (प्रकाशक विचार) भी स्वप्न के साथ उदित होंगे। यदि ऐसा होने लगे तो उसे फिर भी 'हूँ' पर ध्यानस्थ होना चाहिये तथा प्रभास्वरता के ज्ञान (जागृति) को इस भाँति रखना चाहिये कि वह प्रभास्वर प्रकाश को नियन्त्रित कर सके। जो साधक गहरी नींद में प्रभास्वर प्रकाश को नहीं जान पाते, उन्हें हतोत्साह होने की जरूरत नहीं, बल्कि इनके स्थान पर उसे जानने के लिये दुबारा प्रयत्न करना चाहिये ऐसा करने पर धीरे-धीरे उस पर वह विजय (सफलता) पायगा। यदि प्राण के विक्षोभ (गड़बड़ी) से कोई स्वप्न पैदा हो तो उसे इस स्वप्न दर्शन को संरक्षक बुद्ध (इष्टदेव) की अपनी मण्डली के साथ संयुक्त कर देना चाहिये, तब एक बार फिर उसे समाप्त कर (भंग कर) महाशून्यता में विलीन कर देना चाहिये।

साधक को यह अवश्य जानना चाहिये कि कम प्रभास्वर प्रकाश (लघुतर प्रभास्वर प्रकाश) स्वप्न का सहज प्रभास्वर प्रकाश नहीं है, पर बाद वाली चतुर्थ शून्यता या सहज प्रभास्वर हर प्रकार के विभेदक या क्षुब्ध विचारों (चित्तों) से रहित है। जब कि पहला बनावटी अल्प प्रभास्वर प्रकाश है तथा विभेदक संक्षुब्ध विचारों से मिश्रित, अर्थात् मिला हुआ है, लेकिन यदि साधक कम प्रभास्वर योग का अभ्यास भी दृढ़ता पूर्ण और शक्ति सम्पन्न होकर कर सका, तो सहज प्रभास्वर प्रकाश को प्राप्त करने में वह अवश्य सफल होगा। वर्तमान समय में तिब्बत में बहुत से ऐसे योगी हैं, जो इस अनुरूप प्रभास्वर प्रकाश को प्राप्त करने में समर्थ हैं। यद्यपि वे साधक, जो इसका ठीक से अभ्यास करते हैं, वे भी कम प्रभास्वर प्रकाश को पकड़ सकते हैं। इसलिये इनकी विभेदकता को जानना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

तीन मौलिक प्रभास्वरताओं के ऊपर टिप्पणियाँ

तन्त्र की शिक्षा के अनुसार प्रभास्वर प्रकाश के तीन वर्ग बनाये जा सकते हैं—

1. आश्रय प्रभास्वरता
2. मार्ग प्रभास्वरता
3. फल प्रभास्वरता

1. आश्रय प्रभास्वरता

यह वह सहज प्रभास्वरता है, जो हर समय साधक के बिना बोध या अबोध के रहती है। सुषुप्ति की प्रभास्वरता और मृत्यु की प्रभास्वरता इस प्रकार के वर्ग में आती है।

2. मार्ग प्रभास्वरता

यह शून्यता का साक्षात् अनुभव, चार प्रकार के प्रभास्वर या शून्यताएं हैं, जो मध्यनाड़ी में प्राण के पहुँचते ही खुल जाती हैं। यह प्रज्ञा अभेदात्मक (अभेदमूलक) अनुत्पन्न शून्यता का अनुभव है, जो ज्ञाता और ज्ञेय के द्वैत से परे है।

3. फल प्रभास्वरता

यह दोनों का एक में परम दीप्तिमय प्रभास्वर प्रकाश का अनुभव है, जो बुद्धत्व की पूर्णता का अवबोध है।

नींद की प्रभास्वरता को कई भागों में बाँटा जा सकता है— वह जो गहरी निद्रा (नींद) में बिना विषयबोध के पहचान में आती है, उसे सुषुप्ति की प्रभास्वरता कहते हैं और जो स्थूल और सूक्ष्म विषयों के साथ पहचान में आती है, ऐसी प्रभास्वरता को हल्की नींद की प्रभास्वरता (भावस्वरता) कहते हैं। जैसा कि पहले बतलाया गया है स्वप्नयोग में साधक को देखना चाहिये कि वह अन्तराभव को समझने में पूर्ण विश्वस्त और प्रभुत्व सम्पन्न है या नहीं? वह अपने से स्वयं पूछे कि वर्तमान अनुभव पर क्या मैं मृत्यु की प्रभास्वरता पर आधिपत्य कर सकता हूँ? जब उसे यह समझ में आ जाय, तब वह नींद की चारों शून्यताओं पर प्रभुत्व प्राप्त कर सकता है, साधक मृत्यु के समय चारों शून्यताओं को पहचानने में भी सुनिश्चित हो सकता है और उसके लिये मृत्यु इस मार्ग की बहुत ही सहयोगी सिद्ध हो सकती है।

इस प्रकार प्रभास्वर योग की साधना में सांसारिक चञ्चलता और भेद्य-भेदकता को शुद्ध कर सहज प्रभास्वर प्रकाश की दीप्त प्रज्ञा के आधार पर स्वतः प्रज्ञा का अनुभव होता है। साधक अपने अशुद्ध सांस्कारिक विचारों को समाप्त कर सकता है, सूर्य और मातृप्रकाश को एक दीप्ति प्रभास्वर प्रकाश में मिला सकता है और सभी पूर्ण एवं स्वतः उत्पन्न प्रभास्वर प्रकाशों को एक में सम्मिलित करा सकता है। इस प्रकार साधक पूर्ण धर्मकाय¹ और रूपकाय² का अधिगम करेगा और संसार की समाप्ति के पहले बिना किसी प्रयत्न के मानवमात्र के असंख्य रूपों को उत्पन्न करने में सहायता करेगा।

1. धर्मकायः—हृच्चक्रं धर्मकायः, हूँकारादिरूपस्कन्धघातूपसंहारकत्वात्।

(व० ति० टी०, पृ० 78)

प्राङ्निर्णीतः परममुखस्वभावो हेतुप्रत्ययनिरपेक्षो यः स धर्मकाय इत्युच्यते।

(व० ति० टी०, पृ० 85)

2. रूपकाय—शरीर का आकार या आकारित शरीर, जो दोनों प्रकार के दिव्य कार्यों (संभोग काय और निर्माण काय) की ओर संकेत करता है।

रूपकायादयो भावास्तत्त्वरूपं यथा न ते।

तद्वारणं कृतं पूर्वं रूपत्वं च ततः स्थितम् ॥ (ज्ञानसिद्धि 12:2)

महामुद्रा दर्शन :: परम्परागत साधनाविधि-२

—डा० टशी सम्फेल—

['धीः' के नवें अंक में महामुद्रा नाम की निरुक्ति, उसके पर्याय भेद और सूत्र तथा तन्त्र ग्रन्थों में प्रतिपादित महामुद्रा के स्वरूप आदि पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया था । उसी क्रम में यहाँ महामुद्रा की परम्परा और उसकी विभिन्न साधनाविधियों पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है ।]

महामुद्रा की परम्परा

महामुद्रा का दर्शन क्या है, इसकी चर्चा पहले की जा चुकी है । अब यहाँ उसकी परम्परा की संक्षेप में चर्चा करने जा रहे हैं । इस परम्परा को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं । जैसे—

प्रथम—सूत्रसम्मत महामुद्रा की परम्परा ।

द्वितीय—तन्त्रनयसम्मत महामुद्रा की परम्परा ।

तृतीय—सूत्र और तन्त्र का युगल स्वरूप एवं सहज साधना के साधकों द्वारा स्थापित महामुद्रा की परम्परा ।

प्रथम परम्परा

इन तीनों आम्नायों का अपना पृथक्-पृथक् एवं स्वतन्त्र मत भी है । जैसे कि सूत्र आम्नाय के अनुसार यह माना जाता है कि बुद्ध ने बोधि प्राप्ति के 12 वर्ष पश्चात् गृध्रकूट पर्वत में पारमितायान का उपदेश दिया । उसी उपदेश पर प्रमुख रूप से आधारित महामुद्रा नय को सूत्रानुसार महामुद्रा देशना की परम्परा कहते हैं, अर्थात् बुद्ध द्वारा पहले और दूसरे धर्मचक्र प्रवर्तन में उपदिष्ट शून्यता ही यहाँ महामुद्रा है और यही प्रथम परम्परा है । इस परम्परा के अनुसार महामुद्रा का स्वरूप वही है, जो प्रज्ञापारमिता सूत्रों में दिखता है ।

द्वितीय परम्परा

बुद्ध के द्वारा तन्त्र की देशना के सम्बन्ध में विद्वानों में अनेकानेक मतभेद हैं । कुछ विद्वान् सेकोद्देश टीका के इस वचन को—

गृध्रकूटे यथाशास्त्रं प्रज्ञापारमितानये¹ ।
तथा मन्त्रनये प्रोक्ता श्रीधान्ये धर्मदेशना ॥

उद्धृत करते हुए द्वितीय और तृतीय धर्मचक्र प्रवर्तन का एक ही काल मानते हैं। लेकिन जब तन्त्रों की देशना से सम्बद्ध निदानों को देखते हैं, तो हम बुद्ध को पृथक्-पृथक् विनेय जनों के लिये पृथक्-पृथक् देशना करते हुए पाते हैं। जैसे नामसंगीति की टिप्पणी अमृतकणिका में तन्त्रयान की देशना एवं स्थान के सम्बन्ध में लिखा है—

“इह खलु श्रीधान्यकटके महाचैत्यस्थाने नानातन्त्रश्रवणार्थिभिरध्येषितः श्रीशाक्यसिंहो नाम बुद्धो भगवान् चैत्रपूर्णिमायां श्रीधर्मधातुवागीश्वरमण्डलं तदुपरि श्रीमान् नक्षत्रमण्डलमादिबुद्धं विस्फार्य तस्मिन्नेव दिने बुद्धाभिषेकं दत्त्वा देवादिभ्यः सर्वमन्त्रनीतिबृहत्लघुतन्त्रभेदेन देशितवान्”² ।

अर्थात् धान्यकटक में नाना तन्त्रों के श्रवणार्थियों द्वारा अध्येषणा करने पर शाक्यसिंह (बुद्ध) ने चैत्र पूर्णिमा के दिन धर्मधातु वागीश्वर मण्डल के ऊपर नक्षत्र मण्डल में आदिबुद्ध को प्रस्फुटित कर उसी दिन अभिषेक प्रदान कर देवताओं को बृहत् एवं लघुतन्त्र के भेद से देशना की। उसी प्रकार नङ्गपाद ने सेकोद्देशटीका में कहा है—

“क्व कस्मिन् मण्डले कुत्र स्थितः ? कया परिषदा परिवृतो भगवानाह श्रीधान्ये नियतमन्त्र-नयदेशनास्थाने महामुखवासे वज्रधातुमहामण्डले वज्रसिंहासने स्थितः”³ ।

इसी प्रकार क्रिया, चर्या, अनुत्तर और अनुत्तर योगतन्त्रों के निदानों को देखने से भी ज्ञात होता है कि तन्त्र की देशना विभिन्न स्थानों में हुई है। तिब्बत के महान् इतिहासकार तारनाथ ने भी लिखा है—“सूत्र (और) तन्त्र के देश, काल और शास्ता का भेद नहीं है। मनुष्य लोक में महायान सूत्रों के साथ प्रायः तन्त्रों की भी उत्पत्ति हुई। अधिकतर अनुत्तर तन्त्र तो सिद्धाचार्यों द्वारा क्रमशः लाये गये। उदाहरण के लिये श्री सरह (769-809) के द्वारा बुद्धकपाल, लूईपा (769-809) के द्वारा योगिनीसंचर्या आदि, कम्बलपा और सरोरुहवज्र द्वारा हेवज्र, कृष्णचारिन् द्वारा सम्पुट-तिलक, ललितवज्र द्वारा कृष्णयमारि, गम्भीरवज्र द्वारा वज्रामृत, कुक्कुरिपा(द) द्वारा महामाया और पिटोपा द्वारा कालचक्र लाया गया आदि-आदि⁴ ।

तृतीय परम्परा

द्वसपो टशी नामग्याल ने महामुद्रा चन्द्ररश्मि नामक ग्रन्थ में लिखा है—सम्यक् सम्बुद्ध ने तीन प्रकार के गोत्र (से युक्त त्रिविध विनेय लोगों) के अध्याशय के अनुसार तीन बार धर्मचक्र प्रवर्तन किया। तत्पश्चात् परिनिर्वाण के पूर्व सभी धर्मों के रहस्यगत गूढार्थ की देशना का उपयुक्त

1. सेकोद्देशटीका, पृ० 3, गा० ओ० सी०, बड़ौदा ।
2. अमृतकणिका, नामसंगीतिटिप्पणी, देखे—के० उ० ति० शि० संस्थान, सारनाथ से प्रकाशित ‘धीः’ अंक 3, पृ० 114
3. सेकोद्देशटीका, पृ० 3, गा० ओ० सी०, बड़ौदा ।
4. लामा तारनाथकृत “भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास”, सन् 1971 में काशीप्रसाद जायसवाल रिसर्च इंस्टिट्यूट से प्रकाशित, पृ० 145-46.

अवसर देखकर दक्षिण में बेताहपुर¹ में प्रकट होकर वहीं मञ्जुश्री और अवलोकितेश्वर द्वारा अनुरोध करने पर उनको महामुद्रा का उपदेश दिया तथा भविष्य में इस गूढार्थ को प्रकाशित करने वाले सरह और नागार्जुन आदि आयेंगे, ऐसी भविष्यवाणी भी की थी।

उसके कुछ समय बाद मञ्जुश्री ने देवपुत्र रत्नमति के और अवलोकितेश्वर ने सुखनाथ के रूप में प्रकट होकर सरह को अनुगृहीत किया। इस प्रकार सरह, नागार्जुन, शबरीपाद, मैत्रीपाद, मरपा, मिलारस्पा और द्वग्सपो रिन्पोछे आदि इस परम्परा के प्रमुख आचार्य रहे हैं²।

साधना पद्धति

कहा जा चुका है कि महामुद्रा की साधनाविधियाँ तीन प्रकार की होती हैं—

1. सूत्रनय के अनुसार महामुद्रा की साधनाविधि।
2. तन्त्रानुसार महामुद्रा की साधनाविधि।
3. सूत्र और तन्त्र के युगल स्वरूप एवं सहज साधकों द्वारा स्थापित महामुद्रा की साधनाविधि।

1. सभी धर्मों की प्रकृति महामुद्रा है, ऐसा समाधिराज सूत्र³ में उल्लिखित है। तदनुसार शून्यता ही महामुद्रा है। रत्नदारिकापरिपृच्छा सूत्र में भी “सभी धर्म गगन समलक्षण हैं” कहकर वस्तुओं की निःस्वभावता को ही महामुद्रा कहा गया है। मैत्रेय-अवतार सूत्र में भी कहा गया है— “कुलपुत्र ! सभी धर्म शून्यता से मुद्रित हैं”⁴। अतः सूत्रालङ्कार, अभिधर्मसमुच्चय आदि अनेक ग्रन्थों में उपदिष्ट शमथ और विषयना की साधना के सभी धर्मों को चतुष्कोटिविनिर्मुक्त निष्प्रपञ्च प्रतिपादित कर या उसका बोध कर विषयीसमता में स्थिरीकरण ही महामुद्रा का साक्षात्कार करने की विधि है। इसी को महामुद्रा का दर्शन और साधना-विधि कहते हैं।

2. अचिन्त्याद्वयक्रमोपदेश में कहा है—

दर्पणालोकबिम्बेषु यथा सर्वं प्रदृश्यते।

तथैवाद्वयज्ञानेऽस्मिन् बुद्धबोधिरचिन्तिता ॥ 82 ॥

त्रैधातुकेषु सर्वेषु उत्पत्तिस्थितिहेतुभिः।

तत्सर्वमद्वयज्ञान उद्भूता सर्वजन्तवः ॥ 83 ॥

सागराः पर्वता वृक्षास्तृणगुल्मलताश्च ये।

विनिःसृताऽद्वयज्ञानाद् भ्रान्तिरत्र न विद्यते ॥ 84 ॥

1. वर्तमान गुण्डूर जिले के (आन्ध्र) अन्तर्गत आता है।
2. महामुद्रा चन्द्ररश्मि तिब्बती संस्करण, पृ० 53 क
3. स्दे० ब्कऽ० म्दो-स्दे (द D59 क)।
4. आर्य मैत्रीय प्रस्थान नाम महायानसूत्र (स्दे० ब्कऽ० सं० 198, म्दो० च० पृ० 280)

इसी प्रकार सरहपाद ने भी कहा है—चित्तरत्न के अतिरिक्त न सत्त्व है और न बुद्ध, आदि-आदि। अर्थात् सभी धर्म प्रकृति चित्त के विस्तार मात्र हैं। साधना में पिण्ड और भेदन (उत्पत्ति एवं प्रत्याहार) भेद के क्रम के अनुसार पहले स्वदेह की इष्टदेव के रूप में भावना कर फिर विलय द्वारा, अर्थात् उत्पत्ति और निष्पन्नक्रम की भावना पर जोर दिया जाता है। इसके लिये अभिषेक आदि की अनिवार्यता होती है। अभिषेक के अभाव में न सिद्धि लब्ध हो सकती है और न साधना का कोई विशेष फल। इस प्रकार सर्वप्रथम तन्त्र में प्रवेश के लिये कलश आदि चार अभिषेक प्राप्त करना आवश्यक होता है। उसके बाद उत्पत्तिक्रम और निष्पन्नक्रम की भावना करनी पड़ती है।

उत्पत्तिक्रम

मातृतन्त्र, पितृतन्त्र और अद्वयतन्त्र का भेद निष्पन्नक्रम की भावना विधि को लेकर हुआ है। तीनों में उत्पत्तिक्रम की भावना प्रायः समान है।

फिर भी साधक उत्पत्तिक्रम की भावना अपनी योग्यता एवं बुद्धि के अनुसार जरायुज, उपपादुक, अण्डज आदि के जन्म के अनुरूप चार योगों (योग, अनुयोग आदि) की किसी भी विधि से कर सकता है। साधक चाहे मातृ-पितृ आदि किसी भी तन्त्र का साधक हो, वह अपनी इच्छा के अनुसार उत्पत्तिक्रम की भावना करता है।

निष्पन्नक्रम

इसकी भावना के अनेक भेद हैं, जैसे पितृ-तन्त्र के अनुसार पंचक्रम द्वारा साधना करते हैं। पंचक्रम निम्नलिखित हैं :—

1. कायविवेक } वज्रजाप¹ में सम्मिलित होते हैं।
- वाग्विवेक }
2. चित्तविवेक
3. मायाकाय
4. प्रभास्वर
5. युगनद्ध की भावना॥

मातृतन्त्र के अनुसार निष्पन्नक्रम के साधक को कर्ममुद्रा, समयमुद्रा, ज्ञानमुद्रा और महा-मुद्रा इन चार मुद्राओं के अनुसार भावना करनी होती है। अद्वयतन्त्र के अनुसार षडङ्ग योग की साधना की जाती है,² जैसे कि सेकोदेश में कहा है—

1. श्वास-प्रश्वास और कुम्भक के साथ मन्त्र का तादात्म्य कर मन्त्रावृत्ति करना वज्रजाप कहलाता है।
2. कुन्धेन पद्मा करपो का वचन संग्रह, दार्जेलिङ्ग संस्करण भाग 22 ज (ङ) 342.

प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ धारणा ।
अनुस्मृतिः समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते¹ ॥

षडङ्ग योग के छः अङ्ग ये हैं—

1. प्रत्याहार
2. ध्यान
3. प्राणायाम
4. धारणा
5. अनुस्मृति
6. समाधि ।

ये ही साधना के छः अंग हैं। यद्यपि यही संख्या एवं नाम पितृतन्त्र गुह्यसमाज आदि में भी आये हैं, लेकिन इनमें नाम समान होने पर भी अर्थ में अन्तर है। उपर्युक्त षडङ्ग योग, अद्वय-तन्त्र कालचक्र के अनुसार भाव्य षड्योग की ही साधना है और यह उसका मुख्य केन्द्रबिन्दु है। यहाँ इस साधना विधि पर चर्चा नहीं करनी है। यहाँ सामान्य तन्त्र की रूपरेखा तथा किस साधना विधि द्वारा महामुद्रा का साक्षात्कार किया जाता है, इसे कहा जायगा।

वज्रयानी साधकों की मान्यता है कि चित्त और प्राणवायु का विशेष सम्बन्ध है। अतः चित्त पर काबू पाने के लिये प्राणवायु पर नियन्त्रण करना आवश्यक होता है, जिसके लिये प्राणायाम, वज्रजाप, चण्डाली आदि के आधार पर साधना की जाती है। इसलिये वज्रयानियों का कहना है कि प्रधानतया चित्तराज जागरित अवस्था में नाभि क्षेत्र में, स्वप्न में कण्ठचक्र में, निद्रा में हृदयकमल में, समापत्ति में उष्णीषचक्र में रहता है। अतः उसके साक्षात्कार के लिये चण्डाली, मायाकाय, प्रभास्वर आदि की भावना की जाती है। इसके लिये नाड़ी, वायु, बिन्दु आदि की भावना करनी पड़ती है। उसके अभाव में निष्पन्नक्रम की साधना सम्भव नहीं हो सकती। वज्रयान के अनुसार 'तन्त्र' शब्द के दो अर्थ लिये जाते हैं—नेयार्थ एवं नीतार्थ। तदनुसार इसका अभिधेयार्थ बोधिचित्त, महामुद्रा, सूक्ष्म प्राणवायु, सूक्ष्मचित्त, महासम्पन्नचित्त आदि है। ये सब पर्यायवाची शब्द हैं तथा ये ही साधना के तत्त्व हैं। इनका साक्षात्कार करना होता है। सामान्यतः साधना में वस्तु, मार्ग (हेतुगत उपाय) और फल तीन² प्रकार होते हैं, उसी प्रकार महामुद्रा के भी तीन भेद हैं। वस्तु मुद्रा के सम्बन्ध में दगसपो टशी नामग्याल ने कहा है—“सामान्यतया सभी

1. श्री नडपाद (नारोपा) विरचित सेकोद्देशटीका, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा से सन् 1941 में प्रकाशित, पृ० 30.
2. प्रबन्धं तन्त्रमाख्यातं तत् प्रबन्धं त्रिषा भवेत् ।
आधारः प्रकृतिश्चैव असंहार्यप्रभेदतः ॥
प्रकृतिश्चाकृतेर्हेतुरसंहार्यं फलं तथा ।
आधारस्तदुपायश्च त्रिभिस्तन्त्रार्थसंग्रहः ॥ (गुह्यसमाज, 18.33-34)

धर्मों की धर्मता आदितः निष्प्रपञ्च, प्रकृतितः प्रभास्वर शून्यता और भव एवं निर्वाण की अधिपति होती है और विषय-विषयीभाव विवर्जित प्राकृतिक चित्त (चित्त की धर्मता) है, वही आधय या वस्तु महामुद्रा है” ।

भव-निर्वाण की आदितः अनुत्पन्न, अनिरुद्ध एवं अस्थानता, अनादि प्रभास्वरता को श्रुत, चिन्ता एवं भावनामय मार्ग द्वारा अधिगत करना या उसकी अधिगति का मार्ग महामुद्रा कहा जाता है ।

इस प्रकार वस्तु (विषय वस्तु) महामुद्रा की मार्ग द्वारा भावना करने से आविर्भूत गगन-सदृश विशुद्ध अद्वैत ज्ञान की प्राप्ति होती है । उसी को फलमुद्रा कहा जाता है¹ । इस प्रकार तन्त्रनय का फल महामुद्रा का साक्षात्कार उपर्युक्त उत्पत्ति एवं निष्पन्न क्रमद्वय की साधना से ही सम्भव होता है, अन्यथा नहीं । जैसा कि तिब्बत के महान् साधक जें रङ्जुङ् दोर्जे कहते हैं—“जैसे काष्ठ में अग्नि सर्वदा विद्यमान रहती है । लेकिन उसे (काष्ठ को) काट कर या (उसे) फड़वाकर अग्नि उपलब्ध नहीं कर सकते, अग्नि उत्पन्न करने की साधना मात्र हाथ से दोनों काष्ठों की रगड़कर ही होती है, उसी प्रकार हमारे चित्त में स्वभावतः स्थित प्रज्ञोपाय के अद्वयज्ञान की, अर्थात् शून्यता एवं प्रभास्वरता का ज्ञान भी रसना और ललना नाड़ी में बहने वाली विकल्पयुक्त कर्मवायु को मध्यमा यानी अवधूती में प्रवेश कराने से ही आविर्भूत होता है । शुष्क तार्किक उपायों द्वारा इस ज्ञान को प्राप्त करना सम्भव नहीं है । उसी प्रकार पण्डित बलदेव उपाध्याय लिखते हैं—“इड़ा और पिंगला नाड़ी अथवा प्राण और अपान वायु का समीकरण ही ‘एवं’ है । इन दोनों की वैषम्य अवस्था में जगत् की उत्पत्ति होती है । इनकी समता प्रलय का सूचक एवं अद्वैत की अवस्था है । जगत् में दो विरुद्ध शक्तियाँ हैं, जो एक दूसरे का उपमर्दन कर प्रभुतालाभ करने के लिये सदा प्रयत्नशील रहती हैं”² ।

अतः दोनों नाड़ियों के मेल के अभाव में जगत् का प्रवाह निरुद्ध नहीं हो पाता । इसके अवरोध के लिये तर्क-वितर्क चिन्तन आदि पर्याप्त नहीं हैं । जैसे चन्दन को भले ही हम काट-काट कर इतना सूक्ष्म कर डालें, जहाँ वह इन्द्रियों से अगोचर हो जाये, फिर भी उससे अग्नि प्रकट नहीं की जा सकती, मात्र चन्दनकाष्ठ को एक दूसरे से रगड़ कर ही अग्नि उत्पन्न की जाती है । उसी प्रकार पारमितायान में कथित मार्ग का जितना भी चिन्तन-मनन करें तथा सम्भारद्वय का जितना भी संचय करें, अन्ततोगत्वा द्वैत की धारणा का नाश करना है तो तन्त्र का अनुगमन कर इड़ा और पिङ्गला की रगड़ से मध्य अवधूती में सूक्ष्म प्राण-वायु का प्रवेश कराना ही होगा । अतः जिसने उपर्युक्त साधना द्वारा तत्त्वज्ञान का साक्षात्कार एवं अधिगम कर लिया हो, ऐसे गुरु के चरणों में रहकर चण्डाली आदि के आधार पर किये जाने वाले अभ्यास से ही साक्षात्कार करना चाहिये । इसी तथ्य को लक्ष्यकर हेवञ्जतन्त्र में कहा गया है—“काय में महाज्ञान स्थित है”³ इत्यादि ।

1. महामुद्रा चन्द्र रश्मि, तिब्बती संस्करण, पृ० 43ख ।

2. बौद्ध दर्शन मीमांसा, पृ० 325, तृतीय संस्करण 1978.

3. “लुस्-ल-येशेस्-छेन्पो-गुन्स् ।” भूटान के खन्पो गेदुन रिन्छेन द्वारा रचित हेवञ्जटीका, पृ० 25 ख में उद्धृत ।

सूत्र एवं तन्त्र का युगल मार्ग

महामुद्रा की साधना विधि में सरहपाद एवं शबरिपाद आदि सिद्धों ने एक स्वतन्त्र मार्ग का भी प्रतिपादन किया है, जिसे आधुनिक विद्वान् राहुल आदि चिन्तक सहजयान की संज्ञा देते हैं। जिसमें सूत्रों में वर्णित षट्पारमिता, चार संग्रह वस्तुएं, शील आदि मार्गों के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अनिवार्य स्वीकार नहीं किया और इन साधनाओं पर जोर नहीं दिया गया है। सूत्रों में प्रतिपादित एकानेकवियुक्तत्व, प्रतीत्यसमुत्पाद आदि युक्तियों के आधार पर माध्यमिकों की शास्त्रार्थ विधि एवं तत्त्व प्रतिपादन विधि को भी, जो मूल माध्यमिककारिका आदि की गतागत परीक्षा, तथागत परीक्षा, स्कन्ध परीक्षा आदि में वर्णित है, एक-एक करके विशेष विचार न कर प्रधानतः यहाँ विषय की स्थापना में विज्ञानवादियों की तरह या तन्त्र की तरह विश्व को चित्त का विस्तार एवं वासना का प्रतिबिम्ब मात्र स्वीकार किया गया है तथा सभी धर्मों को चित्त का प्रतीतिमात्र माना गया है—

त्रैधातुकेषु सर्वेषु उत्पत्तिस्थितिहेतुभिः ।
तत्सर्वमद्वयज्ञान उद्भूताः सर्वजन्तवः ॥¹

पुनः जैसे विज्ञानवादियों ने द्वतश्नून्यता की पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की है, वैसा न मानकर उसकी व्याख्या पुनः प्रतीत्यसमुत्पन्न के रूप में कर निष्प्रपञ्च सिद्ध किया है। अतः यह मत विज्ञानवादी चिन्तन से भी आगे निकल जाता है तथा बाह्यार्थ को चित्त प्रतीति रूप मानकर चित्त को पुनः निष्प्रपञ्च प्रतिपादित करता है। परमार्थ में ये सहजयानी पूर्ण रूप से माध्यमिकों का अनुकरण करते हैं।

तन्त्रनय में आकर तत्त्व का साक्षात्कार करने वाले साधक के लिये पुनः अभिषेक आदि प्राप्त करने की बात कही गई है। उत्पत्तिक्रम आदि में कल्पना द्वारा स्फुरण और संहार की गई साधनाविधियों को भी बताया गया है, जो निष्प्रपञ्च ज्ञान की प्राप्ति एवं उसमें स्थित होने में बाधक होती है। अतः इन भारतीय सिद्धों ने, जिनमें सरहपाद आदि प्रमुख हैं, तन्त्रनय तथा सूत्रनय का अध्ययन छोड़कर सहज तत्त्व में स्थित होने के लिये कहा है। जैसे गुह्यसिद्धि में कहा गया है—

विहाय मानुषीं मुद्रां सर्वविक्षेपसंभवाम् ।
महामुद्रां निषेवेत स्वदेहोपायसंयुताम् ॥²
स्वसंवेद्या हि सा विद्या महामुद्रा परा शुभा ।
निजदेहाश्रयस्थापि स्वल्पप्रज्ञैर्न दृश्यते ॥³

सिद्ध मैत्रीपाद भी कहते हैं—“जो तत्त्व को जानना चाहे, उसे समझना चाहिये कि वह (तत्त्व) न तो साकार है और न ही निराकार। गुरु के *उपदेशों से अलंकृत माध्यमिक दर्शन भी

1. अचिन्त्याद्वयक्रमोपदेश, श्लोक सं० 83.

2. गुह्यसिद्धि 3.35.

3. गुह्यसिद्धि 3.36.

4. आचार्य चोङ्खापाकृत “जब-लम नारोइ छोस-दुग गी सगो-नस-ऽखीद-पाई-रिम्पा-यीद-छेस-गुसुम-ल्दन” नामक गन्थ के पृ० 13 पर गुरु के वचन का तात्पर्य चन्द्रकीर्ति के माध्यमिक उपदेशों से लिया गया है।

बहुत ज्यादा उत्तम नहीं कहलायेगा।¹” तिलोपा भी कहते हैं—“मन्त्र की आवृत्ति, पारमिता, विनय, सूत्र आदि विभिन्न प्रकार के मत मतान्तर एवं सिद्धान्तों के ज्ञान द्वारा महामुद्रा का साक्षात्कार करना कठिन है, अतः इसके लिये सहज में स्थित होना चाहिये”²। सहज में स्थित होने के लिये किसी भी प्रकार की बाह्य एवं आभ्यन्तर क्रिया-प्रक्रियाओं की आवश्यकता नहीं होती। सरह कहते हैं—“मण्डल, होम, मन्त्र, मुद्रा, प्रतिष्ठा आदि से, तन्त्र और शास्त्रों के अध्ययन से सिद्धि नहीं होगी। मात्र वज्रज्ञान (ज्ञानविशेष) के स्वभाव में स्थित होने से ही इसका साक्षात्कार होगा”³। आगे सरह कहते हैं—“तन्त्र, मन्त्र, चिन्तन, मनन आदि ये सब चित्त को भ्रमित करते हैं, इससे तथ्य का बोध कहाँ होगा”⁴। इसीलिये तो आगे वे और भी कहते हैं—“इसके लिये न दीप की आवश्यकता है और न बलि की, न किसी प्रकार के कृत्यों तथा रक्षा आदि उपायों की आवश्यकता है। केवल वर्तमान में स्थित होना है, अर्थात् भूत और भविष्य से रहित वर्तमान एवं प्रभास्वर में स्थित होना ही महामुद्रा में स्थित होना है”⁵।

1. दे-ब्जीन्-ओद-नी-शेस्-ओद-न ।
नंम्-ब्वस्-म-यिन्-नंम्-मेद्-मीन् ।
बुल-माई-ङ्ग-गीस्-म-बुर्ग्यान्-पाई ।
द्वु-माऽङ्-ऽब्रिङ्पो-चम्-ओद्-दो ।

(तो० सं० 2236, तत्त्वदशकनामतन्त्र, वी० पत्र सं० 113.1 क ।

2. रङ्गस्-सु-स्त्र-दङ्-फरोल-पयीनया दङ् ।
ऽदुल-वाई-स्दे-स्नोद्-लसोस् छोस्-नंम् कयीस ।
रङ्-रङ्-गजुङ्-दङ्-गुब-पाई-मथऽ यीस-वयङ् ।
ओद्-ग्सल्-पयग्-ग्या-छेन्पो तोंग्स मी-ऽग्युर ।

स्दे० ब्स्तान्० ग्युद् जी, पृ० 243 ख ।

3. मण्डल औ होम हजार एक ।
मंत्र और मुद्रा प्रतिष्ठा आदि के बिना ॥
कारण औ सर्व शास्त्र (जिसें) सिद्ध करने में असमर्थ ।
इस वज्रज्ञान स्वभाव में स्थिर सुन्दर ॥

(दोहाकोषगीति (मूल) 30-31)

4. मन्त ण तन्त ण घेअ ण धारण ।
सव्ववि रे बढ विव्वभम कारण ॥

(दोहाकोषगीति (मूल) श्लोक सं० 24)

5. किन्तह दीवें किन्तह णे विजज्जे ।
किन्तह किज्जइ मन्तह सेज्जे ॥

(दोहाकोषगीति (मूल) श्लो० सं० 14)

इसके लिये किसी प्रकार के अभिषेक, ध्यान भावना, साधना आदि की आवश्यकता नहीं है। विकल्प से विकल्प¹ बढ़ता है, निरोध नहीं होता। यही सूत्र और तन्त्र का युगल एवं गूढ़ रहस्य प्रतीत होता है। सूत्र से तत्त्वदर्शन (शून्यता) और तन्त्र से 'एवं' अर्थात् महासुख स्वरूप प्रज्ञोपायमय प्रकृतिचित्त (प्रभास्वर) को लेकर अद्वय का बोध करना ही सहज साधना के साधकों का मार्ग है, जो तृतीय साधना-विधि कहलाती है।



1. स्नानार्चनोपवासैश्च मुद्राबन्धक्रमैस्तथा ।
प्रतिमादिविधानैश्च चैत्यकर्मप्रविस्तरैः ॥
एवं विकल्पलक्षैस्तु या प्रोक्ता भूतवादिनाम्(ना) ।
सिद्धिस्तयाऽपि सिध्यन्ति किन्तु नैवात्र साधकाः ॥
(गुह्यसिद्धि, 1.56-57)

འདི་དག་གི་ནང་དགོས་མཁོ་དང་གལ་གནད་ལ་དམིགས་ཏེ་གྲོག་པ་བོ་.....
 རྣམས་ཀྱི་གཞིགས་བཤེར་ཆེད་ཡིད་ལ་མི་བྱེད་པའི་རིས་པ་ནས་གང་ཐོབ་དང་བདག་བྱིན་.....
 གྱིས་བསྐྱབ་པའི་རིས་པའི་རབ་དབྱེ་ཆ་ཚང་བཞེད་ཡོད།

ནང་པའི་གསུང་རབ་རྣམས་པ་ཁག་ཕྱོགས་བདུས།

༢༥-༢༧

འགོ་བརྗོད་འདིའི་འོག་ཏུ་ ཏུས་དེབ་ལྔ་མ་རྣམས་སུ་གཞུང་དང་གཞུང་.....
 གི་མཚན་པ་བོའི་མཚན་གྱིས་བྲངས་པའི་ལུང་དཀོན་པ་རྣམས་བཞེད་ཡོད། སྐབས་....
 འདིར་དབྱ་མའི་བསྟན་བཅོས་ཀྱི་འགྲེལ་པ་ཚིག་གསལ་དང་། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་.....
 སྟོད་པ་ལ་འཇུག་པའི་དཀའ་འགྲེལ། མཁའ་འགྲོ་མ་དྲ་བ་སྟོམ་པའི་སྤྱིང་པོ་བཅས་སུ་...
 འཁོད་པའི་རྒྱུད་དང་གཞུངས་ཀྱི་ལུང་རྣམས་ཕྱོགས་བདུས་བྱས་ཡོད།

ནང་པའི་མཐུན་མིན་ཆོས་ཚིག་ཁག་གི་དགོངས་པ།

༢༨-༥༠

ཏུས་དེབ་ལྔ་མ་རྣམས་སུ་འགོ་བརྗོད་འདིའི་འོག་གསུང་རབ་མང་པོ་ཞིག་...
 ནས་མཐུན་མིན་ཆོས་ཚིག་ཁག་གི་དོན་རྣམས་ཕྱོགས་བདུས་བྱས་ཡོད། སྐབས་འདིར་སྟོབ་
 དཔོན་ཉི་མ་དཔལ་གྱིས་མཚན་པའི་འཇམ་དཔལ་མཚན་བརྗོད་ཀྱི་མཚན་བདུན་ཅིའི་ཐིགས་པ་...
 ཞེས་པ་དང་མཁའ་འགྲོ་མ་དྲ་བའི་སྟོམ་གྱི་སྤྱིང་པོ་བཅས་ནས་མཐུན་མིན་ཆོས་ཚིག་ཁག་གི་
 བཤད་པ་རྣམས་ཕྱོགས་བསྟུ་བྱས་ཡོད། བདུན་ཅི་ཐིགས་པའི་ལེགས་སྦྱར་གྱི་བྱ་དཔེ་.....
 རྟེན་པར་བརྒྱུད་སྤྱི་ལུ་ཕྱག་ནས་ཆེད་སོན་བྱང་ཞིང་གསུང་རབ་འདི་ད་བར་དཔར་དུ་ཐོན་.....
 མེད།

ནང་པའི་རིག་ས་བཞིའི་དམ་ཚིག་གི་ཕུག་གྲ།

$$v^2 - vv$$

དུས་དེའི་ཡང་ ༡, ༢, ༣, ༤, ༥ རྣམས་སུ་བྱུང་བ་ཕྱི་མཚན་ཉིད་
གསུང་རབ་འདྲ་མིན་ནས་དངས་ཡོད། ལྷ་མོ་མོའི་མཚན་བཟོད་སྣ་ཚོགས་སུ་དམ་ཚིག་
གི་བྱུང་བ་ཡང་འདྲ་མིན་སྣ་ཚོགས་ཡོད་ཚུལ་དེ་དག་དུས་དེའི་དང་པོའི་ནང་བཞུད་ཡོད་པ་
ལྟར་སྐབས་འདིར་ནང་པར་ཡོངས་གྲགས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་རིགས། རྩོམ་སྐབས་
དཔའི་རིགས། བསྐྱའི་རིགས་དང་། རིན་པོ་ཆེའི་རིགས་བཅས་ཀྱི་དམ་ཚིག་གི་བྱུང་བ་
ཕྱི་རྣམས་ཀྱི་མཚན་ཉིད་སྟོར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་བསྐྱུས་པ་ནས་
སྐྱངས་དེ་བཞུད་ཡོད།

དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་བསྐྱུས་པའི་ཚེགས་

བཅད་ཕྱེད་མའི་ཀ་མད་རེམ་པ།

VS-LQ

དུས་དེའི་སྐབས་སུ་ཉམས་ཞིབ་པ་རྣམས་ཀྱི་གཟིག་པ་དེའི་ཆེད་དཔང་...
 མདོར་བསྟན་གྱི་འགྲེལ་བཤད་དང་། གཉིས་མེད་དོ་རྗེས་བསྟུས་པ། ལྷུང་པའི་སྤྱེད་པ།
 དུས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་ལ་སོགས་པའི་གསུང་རབ་རྣམས་ཀྱི་ཁ་སྐོང་ལྷན་ཐབས་རྣམས་དཔང་.....
 བསྟུན་ཞུས་ཡོད། དུས་དེའི་འདྲིའི་ནང་དེ་གཞིན་གཤེགས་པ་ཐབས་ཅད་ཀྱི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་...
 བསྟུས་པའི་ཆོགས་པཅད་སྤྱེད་པ་རྣམས་ཀྱི་མདུན་རིས་པར་བྱེད་པའི་དེ་གཞིན་ཡོད།

དེ་བཞིན་གཤམས་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་དེ་མོན་ཉིད་བསྟུན་པ་ཞེས་པའི་གསུང་
རབ་ཀྱི་ཉུ་སྒྲིགས་(ལམས་སྤུང་ཐོག)༢༡༢༢་ལོ་ཀའཛན་ཅུ་མཚོག་གིས་སྤང་བཟོད་ཀྱས་པ་
ཞིག་དང་བཅས་མཛད་པ་མེདྲི་ལལ་བནང་སྤྲུང་ནས་ ༡༩༥༧ ལོར་དཔར་བསྟར་བྱས་འདུག

ཕྱག་ཆེན་གྱི་རྒྱུད་པ་དང་དེའི་ལྷ་སྒོམ་གྱི་རྣམ་གཞག

१७१-१७२

རྟེན་སྒྲིལ་དཔེ་དབྱ་པའི་ནང་ཕྱག་ཆེན་གྱི་ངེས་ཚིག་དང་། མཚན་གྱི་རྣམ་
གྲངས། དབྱེ་བ། མདོ་དང་རྒྱུད་རྣམས་སྤྱུ་གཏན་ལ་ཕབ་པའི་ཕྱག་རྒྱ་ཆེན་པོའི་ངོ་བོ་...
ལ་སོགས་པའི་སྒོར་གསལ་བཤད་མདོར་བཅུས་བྱས་ཡོད་པ་དེ་བཞིན་སྐབས་འདིར་ཕྱག་...
ཆེན་གྱི་རྒྱུད་པ་དང་རྒྱུ་ཐབས་སྤྲ་ཆགས་སྒོར་རྣམ་བཤད་མདོར་བཅུས་བྱས་ཡོད།

ABSTRACT OF THE ARTICLES

Śrīmanmahābodhi-vandanāṣṭakam and Ādibuddha-stotra 1-2

These hymnal texts occur in the private collections of Prof. J. Upadhyaya, hitherto not published. They refer to folios 7, 10 and hymns 22, 28.

Introduction to Rare Texts 3-24

The present issue of the *Dhīḥ* introduces seven texts, as follow :

1. Mantra-Samuccaya.
2. Dhāraṇīsaṃgrah-Purāṇa mahāyānasūtrarāja.
3. Saṃśaya-pariccheda.
4. Amanasikāra-krama.
5. Dākārṇava.
6. Adhyātma Sāraśataka (Prabhākaragupta).
7. Svādhiṣṭhāna-Prabheda (Āryadeva).

In consideration of the importance and utility of the works the available folios of the *Amanasikāra-krama* and the *Svādhiṣṭhāna Prabheda* texts are completely published.

Collection of Lost Bauddha Vacanas 25-31

The previous numbers of this *Review* have introduced a number of texts with their authors from whom absolute Bauddha vacanas have been elicited. In this issue we present esoteric extracts and dhāraṇīs from the *Prasannapadā* commentary of the *Madhyamak-Śāstra*, the *Bodhicaryāvatāra Pañjikā* and the *Ḍākinījāla-Saṃvara-rahasyam*.

Glossary of Buddhist Technical Terms 32-50

The task of collection of Buddhist technical terms for glossarial elucidation is an additive process in which many works have been

surveyed previously. The present issue brings forth such glossarial matter weaned from the *Amṛtakaṇikānāmaśrīnāma-Saṅgīti-ṭippaṇī* of Ācārya Raviśrī and the *Ḍākinījāla-Saṁvararahasyam*.

The Samayamudrās of Four Buddhakulas

51-55

As many as five issues of this *Review* (nos. 1, 3, 4, 7, 9) have brought forth the specific nature of the *mudras*. It has been stated in the first issue that the rituals of various deities use different *samaya-mudrās*. Presently, we described the features (symbolic articulations) of the four Buddhakulas, as the

1. Tathāgatakula.
2. Vajrasattvakula.
3. Padmakula and
4. Maṇīkula.

Sarva Tathāgata-Tattvasaṁgrah
(Half-Verse Index)

56-89

For convenience of researchers several indices bearing on the above were brought out based up on the texts like the *Sekoddeśa Tīkā*, *Advaya vajra-Saṁgrah*, *Sāadhanamālā*, and *Kālacakra*. We publish here the Half-Verse Index as culled from the *Sarva Tathāgata-Tattvasaṁgrah*.

The above work was comprehensively edited with exhaustive notes by Dr. Lokesh Chandra and was published by Messrs Motilal Banarasidass in 1987. The *Sarva Tathāgata-Tattvasaṁgrah* is extant in Chinese and Tibetan translations. It comes under 'Yoga Tantra' of the esoteric texts. This, of course, is the basic text of the Yoga Tantra. The work is rendered in four parts aiming to which the Ācāryas have prepared their commentaries. It seems that every part is meant to be a complete work. The *Tantrārthavatāra-Vyākhyāna* (TH 2502), a composition of Padmavajra, describes 37 *tattvas* (elements) which also covers the significance of the Tattva-Saṁgrah.

Source Material of the Rare Texts

89-139

Previously we have published information regarding the source material of about 271 important *mss.* in this *review* which were

brought out in book-form (Part one). The ninth issue of the periodical notices 85 such rare texts. We have collected new information about 320 other important *mss.* preserved in the libraries of Asia, Europe and the United States of America which are generally *Bauddha Stotras*. These will appear in two subsequent issues.

*Exposition of Seats and auxiliary Seats in
Tantra Literature*

140-152

In two issues of the *Dhīh*, (nos. 1,2) seats and auxiliary seats (Pīṭhopapīṭha) have been enumerated. In the same context we have described the dhyānas of *Vīras* and *Vīreśvaries* placed on seats in the Herukas Maṇḍala which is of utmost importance for iconography.

Although the divine forms of maṇḍalas are not uniformly found for diversity of tradition, we have here presented the forms of the *Vīras* and *Vīreśvaries* in the *maṇḍala* of Heruka on the basis of Daśabalācāryas *Vasantatilaka*.

Prabhāsvara Yoga Sādhana of Nāropā

153-160

The ninth issue of this *Review*, brought out a summary of Nāropā's third meditational practice enjoying under the 'state of dream'. The present issue glimpses the fourth 'state of luminosity'.

It has been known that all beings realize the luminous moments for brief time toward their life's end. But the yogi experiences this blissful state in the climax of his *samādhi*. For the Buddha it is a usual realisation. The descent of the indescribable light as identical with the stage of Buddha's *enlightenment*. This principle is comprehended only so long as the life lasts.

Mahāmudrā and its Conventional Practice

161-169

The Great Seal (*Mahāmudrā*) has been described in its derivative and conceptual forms as known to the sūtra and tantra texts in the ninth issue of the present *Review*. The tradition of *Mahāmudrā* along with its meditational practice modalities has been briefly dealt with in the current issue.

